शोध दिशा

वर्ष 7 अंक 1 | जनवरी-मार्च 2014 | 40 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार, बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फ़ोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : giriraj3100@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन०सी०आर०
डॉ० अनुभूति भटनागर
सी-106, शिव कला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
मो० : 09928570700

गुड़गाँव कार्यालय
डॉ० मीना अग्रवाल
एफ़-403, पार्क व्यू सिटी-2
सोहना रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-4076565, 07838090732

राजस्थान
राहुल भटनागर
डी-101 पर्ल ग्रीन एकड़, श्री गोपालनगर
सोमानी अस्पताल के पास, गोपालपुरा बाईपास
जयपुर (राज०)
मो० : 08233805777

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
मनोज अबोध
सत्यराज

कला संपादक
गीतिका गोयल 09582845000
डॉ० अनुभूति 09928570700

उपसंपादक
डॉ० अशोक कुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

चित्रकार
डॉ० आर०के० तोमर
देवेंद्र शर्मा
अतुलवर्धन

शुल्क
आजीवन शुल्क : एक हज़ार पाँच सौ रुपए
वार्षिक शुल्क : एक सौ पचास रुपए
एक प्रति : चालीस रुपए
विदेश में : पंद्रह यू०एस०डॉलर (वार्षिक)

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें।

स्वत्वाधिकारी 'हिंदी साहित्य निकेतन' की ओर से स्वत्वाधिकारी, मुद्रक प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, निकट ज्योतिष भवन, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

संरक्षक

रो॰ असित मित्तल, नोएडा
श्री अजय रस्तोगी, मेरठ
श्री निश्चल रस्तोगी, मेरठ
श्री अनिलकुमार गोयल, नोएडा
रो॰ आर॰के॰ जैन, बिजनौर
डॉ॰ धैर्य विश्नोई, बिजनौर
डॉ॰ प्रकाश, बिजनौर
रो॰ राजीव रस्तोगी, मुरादाबाद
रो॰ राकेश सिंहल, मुरादाबाद
श्री महेश अग्रवाल, मुरादाबाद
श्रीमती ताराप्रकाश, मुज़फ़्फ़रनगर
रो॰ परमकीर्तिसरन अग्रवाल, मु॰न॰
रो॰ देवेंद्रकुमार अग्रवाल, (काशी विश्वनाथ स्टील्स, काशीपुर)
श्री प्रमोदकुमार अग्रवाल, (नैनी पेपर्स, काशीपुर)
श्री अमितप्रकाश, मुज़फ़्फ़रनगर
रो॰ नीरज अग्रवाल, जयपुर
श्री सत्येंद्र गुप्ता, नजीबाबाद
श्री अशोक अग्रवाल, गुड़गाँव
डॉ॰ सुधारानी सिंह, मेरठ

आजीवन सदस्य

रो॰ आर॰ के॰ साबू, चंडीगढ़
रो॰ सुशील गुप्ता, नई दिल्ली
रो॰ एम॰एल॰ अग्रवाल, दिल्ली
डॉ॰ मनोजकुमार, दिल्ली
श्री प्रवीण शुक्ल, दिल्ली
डॉ॰ दीप गोयल, दिल्ली
श्री आशीष कंधवे, दिल्ली
श्री अविनाश वाचस्पति, दिल्ली
पावर फाइनेंस कारपोरेशन (इं) लि॰

उत्तर प्रदेश

रो॰ डॉ॰ के॰ सी॰ मित्तल, नोएडा
श्री सुभाष गोयल, नोएडा
श्री ओमप्रकाश यति, नोएडा
डॉ॰ कुँअर बेचैन, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ अंजु भटनागर, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मिथिलेश रोहतगी, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मंजु शुक्ल, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित, शिकोहाबाद
डॉ॰ पल्लवी दीक्षित, शिकोहाबाद
रो॰ डॉ॰ एस॰के॰ राजू, हाथरस
श्री दिनेशचंद्र शर्मा, मोदीनगर
श्री एस॰सी॰ संगल, बुढ़ाना
डॉ॰ नीरू रस्तोगी, कानपुर
श्री विनोदकुमार गोयल, दादरी
श्री अलीहसन मकरैंडिया, दादरी
डॉ॰ प्रणव शर्मा, पीलीभीत
श्रीमती पिंकी चतुर्वेदी, वाराणसी
श्री अरविंदकुमार, जालौन
नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन
डॉ॰ राकेश शरद, आगरा
डॉ॰ राकेश सक्सेना, एटा
श्री अरविंदकुमार, मोहदा (हमीरपुर)
श्री गोपालसिंह, बेलवा (जौनपुर)
डॉ॰ रामसनेहीलाल शर्मा, फिरोजाबाद
श्री दिनेश रस्तौगी, शाहजहाँपुर
श्री भूदेव शर्मा, नोएडा
श्री इंद्रप्रसाद अकेला, मुरादनगर
प्राचार्य, डॉ॰ गोविंदप्रसाद, रानीदेवी पटेल महाविद्यालय कानपुर नगर

खुरजा (उ॰प्र॰)

श्रीमती उषारानी गुप्ता
रो॰ राकेश बंसल
रो॰ डॉ॰ दिनेशपाल सिंह
रो॰ प्रेमप्रकाश अरोड़ा
रो॰ सुनील गुप्ता आदर्श

जे॰पी॰ नगर

रो॰ अभय आनंद रस्तोगी, हसनपुर
रो॰ डॉ॰ विनोदकुमार अग्रवाल, हसनपुर
रो॰ डॉ॰ सरल राघव, अमरोहा
डॉ॰ बीना रुस्तगी, अमरोहा
रो॰ शिवकुमार गोयल, धनौरा
रोटरी क्लब, भरतियाग्राम

अफजलगढ़ (बिजनौर)

रो॰ रविशंकर अग्रवाल
रो॰ अतुलकुमार गुप्ता
रो॰ महेंद्रमानसिंह शेखावत
श्री वासुदेव सरीन
श्री हंसराज सरीन
श्री अमृतलाल शर्मा
श्री सुरेशकुमार

चाँदपुर (बिजनौर)

डॉ॰ मुनीशप्रकाश अग्रवाल
श्री सुरेंद्र मलिक
गुलाबसिंह हिंदू महाविद्यालय
डॉ॰ बलराजसिंह, बाष्टा (बिजनौर)
श्री विपिनकुमार पांडेय

धामपुर (बिजनौर)

डॉ॰ लालबहादुर रावल
श्री जे॰पी॰ शर्मा, शुगर मिल
डॉ॰ सरोज मार्कण्डेय
डॉ॰ शंकर क्षेम
श्री नरेंद्रकुमार गुप्त
श्रीमती सुषमा गौड़
डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी
रो॰ शिवओम अग्रवाल
डॉ॰ वीरेंद्रकुमार शर्मा
डॉ॰ कृष्णकांत चंद्रा
डॉ॰ श्रीमती संहिता शर्मा
डॉ॰ पूनम चौहान
डॉ॰ भानु रघुवंशी
डॉ॰ ख़ालिदा तरन्नुम
श्री आर्यभूषण गर्ग
श्री संजय जैन
श्री निशिवेशसिंह एडवोकेट
श्री दीपेंद्रसिंह चौहान
मौ॰ सुलेमान, परवेज़ अनवर, शेरकोट
कुँ॰ निहालसिंह, दुर्गा पब्लिक स्कूल
प्राचार्य, आर॰एस॰एम॰ (पी॰जी॰)कालेज
प्राचार्या, एस॰बी॰डी॰ महिला कालेज
राधा इंटर कालेज, अल्हेपुर (धामपुर)
धामपुर पब्लिक कन्या इंटर कालेज

नगीना (बिजनौर)

श्री पंकजकुमार, पो॰ भोगली
श्री करनसिंह, पो॰ भोगली
श्री पंकजकुमार अग्रवाल
श्री मुनमुन अग्रवाल
डॉ॰ वारिस लतीफ
श्री ओमवीर सिंह

नजीबाबाद (बिजनौर)

श्री इंद्रदेव भारती
डॉ॰ रासुलता

बरेली (उ॰प्र॰)

रो॰ डॉ॰ आई॰एस॰ तोमर
रो॰ रविप्रकाश अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ रामप्रकाश गोयल
डॉ॰ सविता उपाध्याय
डॉ॰ महाश्वेता चतुर्वेदी
रो॰ पी॰पी॰ सिंह
डॉ॰ अशोक उपाध्याय

रो॰ श्यामजी शर्मा
श्री विशाल अरोड़ा
डॉ॰ वाई॰एन॰ अग्रवाल
श्री राजेंद्र भारती
डॉ॰ देवेंद्राकुमारी झा

बिजनौर (उ॰प्र॰)

श्री राजकमल अग्रवाल
डॉ॰ बलजीत सिंह
रो॰ रमेश गोयल
रो॰ विज्ञानदेव अग्रवाल
श्रीमती शशि जैन
डॉ॰ मोनिका भटनागर
डॉ॰ ओमदत्त आर्य
श्री जोगेंद्रकुमार अरोरा
श्री चंद्रवीरसिंह गहलौत, एडवोकेट
रो॰ आर॰डी॰ शर्मा
डॉ॰ निकेता
डॉ॰ अजय जनमेजय
श्री पुनीत अग्रवाल
डॉ॰ निरंकारसिंह त्यागी
श्री अशोक निर्दोष
श्री वी॰पी॰ गुप्ता
रो॰ प्रदीप सेठी
रो॰ हरिशंकर गुप्ता
रो॰ सी॰पी॰ सिंह
डॉ॰ तिलकराम, वर्धमान कॉलेज
आर॰बी॰डी॰महिला महाविद्यालय
रो॰ डॉ॰ रजनीशचंद्र ऐरन, हल्दौर
श्री अरुण गोयल, किरतपुर
रो॰ डॉ॰ दीपशिखा लाहौटी, नगीना
रो॰ बी॰के॰ मालपानी, स्योहारा
डॉ॰ हेमलता देवी, गोहावर
नहटौर डिग्री कालेज, नहटौर
श्री विवेक गुप्ता, शादीपुर

मवाना (उ॰प्र॰)

रो॰ अनुराग दुबलिश
श्री अंबरीशकुमार गोयल
आर्य कन्या इंटर कालेज
ए॰एस॰ इंटर कालेज
लक्ष्मीदेवी आर्य कन्या डिग्री कालेज

मुज़फ़्फ़रनगर (उ॰प्र॰)

रो॰ शरद अग्रवाल
रो॰ वीरेंद्र अग्रवाल
रो॰ दिनेशमोहन
रो॰ डॉ॰ ईश्वर चंद्रा
रो॰ डॉ॰ अमरकांत
रो॰ अनिल सोबती
रो॰ डॉ॰ जे॰के॰ मित्तल
रो॰ सुधीरकुमार गर्ग
रो॰ प्रदीप गोयल
श्री गौरव प्रकाश
डॉ॰ बी॰के मिश्रा
रो॰ राकेश वर्मा
रो॰ संजीव गोयल
प्राचार्य, एस॰डी॰ कालेज ऑफ लॉ
प्रधानाचार्य, ग्रेन चेम्बर्स पब्लिक स्कूल
रो॰ संजय जैन, शामली
रो॰ डॉ॰ कुलदीप सक्सेना, शामली
रो॰ उमाशंकर गर्ग, शामली
रो॰ डॉ॰ सुनील माहेश्वरी, शामली
श्री अतुलकुमार अग्रवाल, खतौली

मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

रो॰ सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
रो॰ बी॰एस॰ माथुर
रो॰ ललितमोहन गुप्ता
रो॰ सुरेशचंद्र अग्रवाल
श्री शचींद्र भटनागर
रो॰ योगेंद्र अग्रवाल
रो॰ नीरज अग्रवाल
रो॰ के॰के॰ अग्रवाल
रो॰ श्रीमती सरिता लाल
रो॰ श्रीमती चित्रा अग्रवाल
डॉ॰ महेश 'दिवाकर'
रो॰ ए॰एन॰ पाठक
रो॰ चक्रेश लोहिया
रो॰ यशपाल गुप्ता
रो॰ सुधीर खन्ना
रो॰ रमित गर्ग
श्री विनोदकुमार
डॉ॰ रामानंद शर्मा
डॉ॰ पल्लव अग्रवाल
श्री राजेश्वरप्रसाद गहोई
श्री विश्वअवतार जैमिनी
श्रीमती कनकलता सरस
श्री योगेंद्रकुमार
श्री हरीश गर्ग, संभल
श्री वीरेंद्र गोयल, संभल
श्री नितिन गर्ग, संभल
रो॰ डॉ॰ राकेश चौधरी, चंदौसी

मेरठ (उ॰प्र॰)

रो॰ ओ॰पी॰सपरा
रो॰ विष्णुशरण भार्गव
रो॰ एम॰एस॰ जैन
रो॰ गिरीशमोहन गुप्ता
रो॰ डॉ॰ हरिप्रकाश मित्तल
रो॰ प्रणय गुप्ता
डॉ॰ आर॰के॰ तोमर
रो॰ संजय गुप्ता
श्री किशनस्वरूप
रो॰ नरेश जैन
रो॰ सागर अग्रवाल
डॉ॰ अनिलकुमारी
रो॰ प्रदीप सिंहल
श्री शिवानंद सिंह 'सहयोगी'
रो॰ नवल शाह
डॉ॰ रामगोपाल भारतीय
श्रीमती बीना अग्रवाल
श्रीमती मृदुला गोयल
रो॰ मुकुल गर्ग
श्री सियानंद सिंह त्यागी
श्री राकेश चक्र
रो॰ सी॰पी॰ रस्तौगी
डॉ॰ ज्ञानेदत्त हरित

रामपुर (उ॰प्र॰)

श्री शांतनु अग्रवाल
श्री नरेशकुमार सिंघल
डॉ॰ मीना महे

लखनऊ (उ॰प्र॰)

श्री महेशचंद्र द्विवेदी, आई॰पी॰एस॰
श्री दामोदरदत्त दीक्षित
डॉ॰ किरण पांडेय
श्री अनुपम मित्तल
श्रीमती रेणुका वर्मा
श्रीमती उषा गुप्ता
श्री अमृत खरे
श्री विनायक भूषण

सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
श्री श्रीपाल जैन ठेकेदार
श्री पूर्णसिंह सैनी, बेहट
श्री विनोद 'भृंग'
एम॰एल॰जे॰खेमका गर्ल्स कालेज

उत्तराखंड

डॉ॰ आशा रावत, देहरादून

डॉ॰ राखी उपाध्याय, देहरादून
श्री अमीन अंसारी, जसपुर
श्री विपिनकुमार बक्शी, कोटद्वार
डॉ॰ अर्चना वालिया, कोटद्वार
धनौरी डिग्री कालेज, धनौरी
नेशनल इंटर कालेज, धनौरी

रुड़की

डॉ॰ अनिल शर्मा
श्री प्रेमचंद गुप्ता
श्री अविनाशकुमार शर्मा
श्री वासुदेव पंत
श्री मयंक गुप्ता
श्री अमरीष शर्मा
श्री उमेश कोहली
श्री जे॰पी॰ शर्मा
श्री मनमोहन शर्मा
श्री सुनील साहनी
श्री अशोक शर्मा 'आर्य'
श्री मेनपालसिंह
श्री संजय प्रजापति
श्री ओमदत्त शर्मा
श्री अरविंद शर्मा
श्री राजेश सिंहल
श्री ब्रिजेश गुप्ता
श्री संजीव राणा
श्री ऋषिपाल शर्मा
श्री राजपाल सिंह
बी॰एस॰एम॰इंटर कालेज,
आनंदस्वरूप आर्य सरस्वती विद्या मंदिर
योगी मंगलनाथ सरस्वती विद्या मंदिर
शिवालिक पब्लिक स्कूल, डंडेरा

काशीपुर

श्री समरपाल सिंह
श्री प्रमोदकुमार अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ वी॰एम॰ गोयल
रो॰ डॉ॰ एस॰पी॰ गुप्ता
रो॰ डॉ॰ डी॰के॰ अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ एन॰के॰ अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ रविनंदन सिंघल
रो॰ विजयकुमार जिंदल
रो॰ जितेंद्रकुमार
रो॰ प्रदीप माहेश्वरी
रो॰ रवींद्रमोहन सेठ
श्री प्रमोदसिंह तोमर

आंध्र, कर्नाटक, केरल, मिज़ोरम

श्री अनंत काबरा, हैदराबाद
श्री श्याम गोयनका, बैंगलौर
डॉ॰ दीपा के॰, बैंगलोर (कर्नाटक)
डॉ॰ एन॰ चंद्रशेखरन नायर, केरल
डॉ॰ बी॰ आर॰ राल्टे, आइजॉल

तमिलनाडु

डॉ॰ बी॰ जयलक्ष्मी, चेन्नई
डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन शेष, चेन्नई
श्री एन॰ गुरुमूर्ति, चेन्नई
सुश्री प्रतिभा मलिक, चेन्नई
सुश्री अपराजिता शुभ्रा, चेन्नई
श्री योगेशचंद्र पांडेय, चेन्नई
श्री महेंद्रकुमार सुमन, चेन्नई
श्री संजय ढाकर, चेन्नई
श्री प्रदीप साबू, चेन्नई
सुश्री स्वर्णज्योति, पांडिचेरी

पंजाब

रो॰ विजय गुप्ता, राजपुरा
कर्नल तिलकराज, जालंधर
श्री सागर पंडित, अमृतसर

उड़ीसा

श्री श्यामलाल सिंहल, राउरकेला

मध्य प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़

रो॰ रविप्रकाश लंगर, उज्जैन
डॉ॰ हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
डॉ॰ अशोक भाटी, उज्जैन
श्री माणिक वर्मा, भोपाल
श्री प्रदीप चौबे, ग्वालियर
श्री उमाशंकर मनमौजी, भोपाल
श्री जगदीश जोशीला
श्री विनोदशंकर शुक्ल, रायपुर
श्री रामेश्वर वैष्णव
श्री गजेंद्र तिवारी, बागबाहरा
श्री धीरेंद्रमोहन मिश्र, लक्खीसराय

महाराष्ट्र, गुजरात

रो॰ सज्जन गोयनका, मुंबई
श्री जावेद नदीम, मुंबई
रो॰ डॉ॰ माधव बोराटे, पुणे
श्रीमती रिज़वाना कश्यप, पुणे
रो॰ सुरेश राठौड़, मुंबई
डॉ॰ अश्विनीकुमार 'विष्णु', अमरावती
डॉ॰ शैलजा सुरेश माहेश्वरी, अमलनेर
श्री मधुप पांडेय, नागपुर
श्री सुभाष काबरा
श्री अरुणा अग्रवाल, पुणे
श्री सागर खादीवाला, नागपुर
डॉ॰ मिर्ज़ा एच॰ एम॰, सोलापूर
श्री वनराज आर्ट्स, कॉमर्स कालेज,
धरमपुर (बलसाड)
श्री मोरारजी देसाई आर्ट्स एंड कॉमर्स
कालेज, वीरपुर (तापी)

राजस्थान

रो॰ डॉ॰ अशोक गुप्ता, जयपुर
रो॰ अजय काला, जयपुर
श्री कमल कोठारी, जयपुर
रो॰ विवेक काला, जयपुर
श्री आर॰सी॰ अग्रवाल, जयपुर
श्री राजीव सोगानी, जयपुर
श्री सुरेश सबलावत, जयपुर
श्री कमल टोंगिया, जयपुर
श्री मुकेश गुप्ता, जयपुर
श्री विनोद गुप्ता, जयपुर
श्री गिरधारी शर्मा, जयपुर
रो॰ एस॰के॰ पोद्दार, जयपुर
रो॰ राजेंद्र सांघी, जयपुर
रो॰ आर॰पी॰ गुप्ता, जयपुर
श्री जयपुर चेंबर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंड॰
डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी, भीलवाड़ा
डॉ॰ दयाराम मैठानी, भीलवाड़ा
श्री मुरलीमनोहर बासोतिया, नवलगढ़

हरियाणा

श्री विकास, तहसील महम, रोहतक
डॉ॰ स्नेहलता, रोहतक
डॉ॰ सुदेशकुमारी, जींद
श्री हरिदर्शन, सोनीपत
डॉ॰ प्रवीनबाला, जुलाना मंडी
श्रीमती अनिलकुमारी, घिलौड़ कलाँ
डॉ॰ प्रवीणकुमार वर्मा, फरीदाबाद
श्रीमती रेखारानी, फरीदाबाद
श्रीमती सविताकुमारी, सोनीपत
श्रीमती सुमनलता, रोहतक
श्री सुरेशकुमार, भिवानी
डॉ॰ सविता डागर, चरखी दादरी
छोटूराम किसान कालेज, जींद
प्राचार्य, ए॰पी॰जे॰ सरस्वती पी॰जी॰ कालेज,
चरखी दादरी
विनोदकुमार कौशिक, चरखी दादरी
डी॰सी॰ मॉडल सीनियर सेकेंडरी स्कूल
फरीदाबाद
श्रीमती विधु गुप्ता, गुड़गाँव

पुस्तकें कल्पना के नए द्वार खोलती हैं...

अक्षर की उत्पत्ति के बाद पुस्तक अस्तित्व में आई। जब तक अक्षर प्रयोग में रहेंगे पुस्तक अपना महत्त्व बनाए रखेगी। अक्षरों के बिना संवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। विज्ञान चाहे कितना ही आगे बढ़ गया हो, उसने ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को सरल किया है, न कि पुस्तकों के समानांतर होने की कोशिश की है। आज के वैज्ञानिक युग में पुस्तकों के अलावा संचय और संवहन के अनेक माध्यम सामने आए हैं। इनमें वेब क्रांति ने पुस्तकों की अवधारणा ही बदल दी है। फिर भी पुस्तकें मानव इतिहास के सर्वाधिक प्रामाणिक शास्त्र हैं। आज भी लिखे हुए का महत्त्व अन्य माध्यमों की अपेक्षा कहीं अधिक है। प्राचीन समय में तो लिखावट से मानव-मन तक की जाँच की जाती थी। आज भले ही ज्ञान-संवहन की अनेक तकनीकें आ गई हैं, किंतु वे पुस्तकों से आगे अभी भी नहीं हो पाई हैं।

ख़ाली समय में किताब मानव-समुदाय का सच्चा दोस्त होती है। जब तक विश्व-पटल पर मनुष्य रहेगा, तब तक पुस्तकें इस दुनिया में अपना महत्त्व बनाए रखेंगी। पुराने समय से ही अर्जित व परीक्षित ज्ञान को लिपिबद्ध करने की परंपरा रही है। पुस्तकों के माध्यम से ही एक पीढ़ी अपनी आगामी पीढ़ी को अपना ज्ञान हस्तांतरित करती रही है। जब पुस्तकें नहीं होंगी, तो मानव के ज्ञान को समझने की क्षमता भी नहीं रहेगी।

मनुष्य जीवन-भर कुछ-न कुछ नया सीखता ही रहता है और इस प्रक्रिया में पुस्तकें उल्लेखनीय भूमिका निभाती हैं। पुस्तकों की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। सबसे पहली पुस्तक वेद है। वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ ही है 'ज्ञान'। मुण्डकोपनिषद् से ही हमारे राष्ट्रीय प्रतीक पवित्र वाक्य 'सत्यमेव जयते' को लिया गया। प्राचीनकाल में शिष्य अपने गुरुओं से सुनकर पाठ याद करते थे, जिसे 'श्रुति' कहा जाता था, किंतु ज्ञान के इस अथाह सागर को याद रखना और फिर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपने की आवश्यकता ने पुस्तकों को जन्म दिया। पुस्तकें मनुष्य की सबसे अच्छी मित्र होती हैं। बड़े-बड़े विद्वान और महापुरुष अच्छे पाठक भी रहे हैं। कहा जाता है कि महान बादशाह अकबर साक्षर नहीं था, पर उसे पुस्तकों का बहुत शौक़ था। उसने एक विशाल पुस्कालय बनवाया। वह विद्वानों से पुस्तकें पढ़वाकर ज्ञान अर्जित करता था।

यह युग कंप्यूटर और टी॰वी॰ का युग है। फिर भी यह कहना कि पुस्तकों के पाठक ज़्यादा नहीं हैं, पूर्णत: सही नहीं है, क्योंकि आज भी पढ़ने के शौक़ीनों के घरों को पुस्तकों से सजा हुआ देखा जा सकता है। यदि पढ़ने की आदत बचपन से ही विकसित की जाए, तो यह जीवन-भर साथ रहती है। इसके लिए सही उम्र में अच्छी पुस्तकों का चयन आवश्यक है। इससे बच्चों में ज्ञानवृद्धि के साथ कल्पनाशीलता, रचनात्मकता, बौद्धिक क्षमता, भाषाज्ञान, शब्दभंडार की वृद्धि, वर्तनी की शुद्धता, एकाग्रता, धैर्य जैसे कई गुणों का विकास होता है। वैज्ञानिक शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि जिन बच्चों में पुस्तकें पढ़ने की आदत है, उनका I.Q.उन बच्चों से अधिक होता है, जो टी॰वी॰ या वीडियो गेम खेलने में अपना समय व्यतीत करते हैं। किशोरावस्था में अच्छी पुस्तकें पढ़ने से मार्गदर्शन मिलता है और भविष्य की योजना बनाना आसान हो जाता है। एक उक्ति है कि 'एक अच्छी पुस्तक वह है, जो आशा के साथ खोली जाए और विश्वास के साथ बंद की जाए।'

पुस्तकें यात्रा के समय, प्रतीक्षारत वक्त में, ऊब के क्षणों में, साथ ही रुचि के रूप में हमारी साथी बन जाती हैं। वे विश्व की विविध संस्कृतियों से हमारा परिचय कराती हैं, एकरसता और बोझिलता दूर करती हैं, हमारे आत्मिक, सामाजिक, मानसिक विकास में सहायक होती हैं, मस्तिष्क को सोचने की नई दिशा देती हैं। पुस्तकें कल्पना के नए द्वार खोलती हैं। मुझे पता है कि पुस्तकों को पढ़ने से व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। मेरे घर में हज़ारों पुस्तकें हैं, मेरा बचपन इन पुस्तकों के बीच गुज़रा है और पुस्तकें मुझे बेहद प्यारी हैं। पुस्तकें तो आपको भी प्यारी हैं। हैं न...।

अनुक्रम

कहानियाँ

नैहर छूटो जाए / **डॉ० आश रावत** 7
एक थी माया / **विजय कुमार** 19
लघुकथाएँ / **अभिमन्यु अनत** 37
सरहदों से दूर / **सुरेशचंद्र शुक्ल** 41
सूरज क्यों निकला है? / **सुधा ओम ढींगरा** 45
अहम् / **डॉ० मीना अग्रवाल** 51

व्यंग्य

गधों ने दुलत्ती चलाना कैसे सीखा / **लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'** 27
दारोगा रुस्तम अली / **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** 29
सिधवगढ़ के लुटेरे/ **गिरीश पंकज** 39

बाल-नाटक

हड़बड़ गड़बड़ / **प्रकाश मनु** 32

साहित्य समाचार

कुछ महत्त्वपूर्ण समाचार 54

बधाई

'अशोक चक्रधर सिर्फ़ उस व्यक्ति का नाम नहीं है, जो दक्षिण दिल्ली की सरिता विहार नामक कॉलोनी में रहता है। अशोक चक्रधर सिर्फ़ उस व्यक्ति का नाम भी नहीं है, जो देश-विदेश के कविसम्मेलनों के लिए ज़रूरी कवि है। अशोक चक्रधर सिर्फ़ उस व्यक्ति का नाम भी नहीं है, जिसने समीक्षा और समालोचना के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित किए। अशोक चक्रधर सिर्फ़ उस व्यक्ति का नाम भी नहीं है, जो शैक्षिक धारावाहिकों का लेखक-निर्देशक है। अशोक चक्रधर सिर्फ़ उस व्यक्ति का नाम भी नहीं है, जो संगीत में गहरी पैठ रखता है और यह एक अच्छा गायक है। अशोक चक्रधर सिर्फ़ उस व्यक्ति का नाम भी नहीं है, जो कि एक अच्छा चित्रकार है। कितनी ही प्रदर्शनियों में उसके बनाए हुए चित्र और पोस्टर लगाए जाते हैं। दरअसल, अशोक चक्रधर अनेक प्रकार की प्रतिभाओं के समुच्चय का नाम है। अलग-अलग क्षेत्रों में उसने जो किया सो किया, लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण काम यह किया कि उन्होंने मंचीय हास्य-व्यंग्य को नए आयाम दिए।'

ऐसे विशिष्ट कवि एवं साहित्यकार प्रो० अशोक चक्रधर को शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से सम्मानित किया गया है। इस अभूतपूर्व उपलब्धि के लिए शोध-दिशा परिवार की ओर से हार्दिक बधाई एवं अनेकानेक शुभकामनाएँ।

कहानी

डॉ० आशा रावत

नैहर छूटो जाए

उस समय उसे कहाँ मालूम था कि बनने वाली सड़क अपने साथ ऐसी आँधी लेकर आएगी, जो उसका सब-कुछ उड़ाकर ले जाएगी। न वह अभागी सड़क बनती, न उसकी नियति बिगड़ती, न उसका मायका खोता और न उसकी बेटी को अपना ननिहाल खोजना पड़ता...।

'माँ...मेरा ननिहाल कहाँ है?'

मालती ने माँ से पूछा तो सब्ज़ी काटती सुनयना के हाथ सहसा रुक गए। वह ख़ामोश निगाहों से बेटी का मुँह ताकने लगी। बोल जैसे कहीं खो गए।

माँ की यह स्थिति देख बेटी ने दोबारा कुछ डरते हुए पूछा, 'मतलब, तुम्हारा मायका कहाँ है, जैसे सबका होता है।'

'सबका होता है, तो क्या ज़रूरी है कि मेरा भी!

माँ ने उसे तमककर देखा तो वह सहम गई।

'जाओ जाकर बालकनी से कपड़े उठाकर लाओ। सारे सूख गए होंगे।' माँ ने बात बदलकर उसे काम बता दिया।

मालती कपड़े उठाते हुए सोचने लगी कि उसने माँ से ननिहाल के विषय में पूछकर कौनसा अपराध कर दिया। उसके पड़ौस में रहने वाली और स्कूल में पढ़ने वाली सभी लड़कियों के ननिहाल हैं और वे सब गर्मी की छुट्टियाँ वहाँ बिताती हैं, ख़ूब मौजमस्ती के साथ। फिर उसी का ननिहाल क्यों नहीं है।

अब वह इतनी छोटी नहीं रह गई थी कि मायका ननिहाल ससुराल आदि का अंतर न समझ सके। उसे इस बात का अहसास था कि किसी स्त्री के मायकाविहीन होने की कल्पना नहीं की जा सकती। उसने पहाड़ के गाँव में अपना ददिहाल देखा है, तो कहीं-न-कहीं ननिहाल भी अवश्य होगा। हाँ, यह हो सकता है कि उसका ननिहाल यानी माँ का मायका कहीं दूर पहाड़ी गाँव में हो, जहाँ जाना अत्यंत दुष्कर हो या फिर वहाँ कोई जीवित न बचा हो। दूसरी संभावना ज़्यादा सच लगती है। शायद इसीलिए ननिहाल की बात चलते ही माँ सन्न रह गई थी। फिर तो भविष्य में इसका ज़िक्र करना भी ग़लत होगा।

किंतु माँ की हालत तो माँ ही जानती थी। वह अपनी बेटी को कैसे बताती कि उसका भरा-पूरा मायका है। माँ, पिता, भाई, बहिन सब हैं, पर उसके लिए कोई नहीं है। उन सबके वास्ते वह मर चुकी है। जाने कभी कोई उसे याद करता भी है या सबने बेदर्दी से उसे बिसरा दिया है। सब बिसरा सकते हैं, पर माँ...! क्या वह भी उसे भूल गई है। उसे अपने दिल से निकालकर फेंक दिया है। नहीं, औलाद कैसी भी हो, माँ उसे कभी बिसरा नहीं सकती।

सुनयना की आँखों से आँसू बरस पड़े। शीघ्र ही उसने स्वयं को सँभाल लिया। कोई देख लेगा, तो क्या कहेगा। अपने हरे-भरे परिवार में उसे न रोने का हक़ था, न अवकाश।

वह सरपट रसोई में जाकर खाना बनाने में जुट गई। काम करते हुए उसका ध्यान अपने गाँव पर चला गया। उस दिन पूरे गाँव में कितना शोर मचा था, जब नंदू ढोलकिया ने डामर बनने की ख़बर सुनाई थी। गाँव में कोई भी नई सूचना बतरस में कुशल नंदू के द्वारा पहुँचती थी। उसका सामाजिक दायरा बहुत विशाल था।

उस दिन वह पूरे गाँव में घूम-घूमकर आवाज़ लगाता रहा, 'अजी सौकारो, ओ भले लोगो, मेरी बात सुनिए हमारे गाँव में डामर आ रही है। अब शीघ्र यहाँ भी शहरों की तरह पक्की सड़क बन जाएगी, फिर मोटर बस आएगी। अजी फिर क्या है! रौनक़ ही रौनक़ है।'

सुनयना के पिता गणेश ने उसका शोर सुनकर पूछा, 'क्या है रे...। तू इतना क्यों बड़बड़ा रहा है?'

उसने हाथ जोड़कर कहा, 'साब जी... हमारे गाँव में सड़क आने वाली है।'

'तो क्या यह अच्छी ख़बर है?' उन्होंने मुँह बिचकाकर पूछा।

'क्यों नहीं है साब जी...। सड़क बन जाएगी तो मोटर बस आएगी, तब लोग-बाग सरक (शीघ्र) इधर-उधर आ-जा सकेंगे।'

'हाँ-हाँ क्यों नहीं। सरग (स्वर्ग) तो चले ही जाएँगे। कोई मोटर से दबकर, कोई बात बेबात बूण (शहर) जाकर तो बचे-खुचे लोग वहाँ से आने वाले लुटरों से लुटकर। सरग तो जाएँगे ही बेटा... ज़रूर जाएँगे।'

सुनयना की माँ यह सब सुन रही थी। वह बीच में पड़कर बोली, 'आप हमेशा उल्टा क्यों सोचते हैं। ठीक तो कह रहा है यह नंदू...। सड़क बनेगी, तो हमारे लोगों को काम मिलेगा। बच्चे नियम से पाठशाला जाएँगे। यही नहीं, बाज़ार, घर, अस्पताल समय से पहुँचा जा सकेगा। इतने लाभ कम हैं?'

सुनयना को भी अपनी माँ की बात ठीक लगी थी। वह दो वर्ष पूर्व आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर चुकी थी। उसके मन में आस जगी, सड़क बनने से संभवत: वह दूर के बड़े विद्यालय में जा सके।

उस समय उसे कहाँ मालूम था कि बनने वाली सड़क अपने साथ ऐसी आँधी लेकर आएगी, जो उसका सब-कुछ उड़ाकर ले जाएगी। न वह अभागी सड़क बनती, न उसकी नियति बिगड़ती, न उसका मायका खोता और न उसकी बेटी को अपना ननिहाल खोजना पड़ता...।

अभी सड़क की चर्चा चल ही रही थी कि सुनयना के पिता ने दूर से आते प्रधान जी के साथ दो पुरुषों को देखकर पूछा, 'प्रधानजी के साथ वे दो अजनबी कौन हैं?

नंदू ने उत्तर दिया, 'वही तो हैं डामर के ठेकेदार भीमसिंह और उनके साथ उनका सहायक वह युवक देवेंद्र उर्फ देवू...।' ये तो यहीं आ रहे हैं, यह देखकर गणेश ने सुनयना से चाय बनाने के लिए कहा, तो वह माँ के साथ रसोई में चली गई।

प्रधानजी ने इनका परिचय कराने के बाद गणेश से पूछा, 'भाई... इन्हें चार छ: महीने के लिए दो कमरे चाहिए, तुम्हारे उस ओर छनि (गोशाला) के समीप वाले कमरे ख़ाली हैं, किराए पर दे दोगे?'

गणेश दुविधा में पड़ गया। उसके कमरे ख़ाली अवश्य थे, किंतु उस समय किराए पर देने का रिवाज़ आरंभ नहीं हुआ था। फिर ये अजनबी लोग जाने कैसे हों।

प्रधान जी के अनुरोध पर गणेश उन्हें कमरे देने को तैयार हो गया। तभी सुनयना चाय लेकर आ गई। उसने प्रधान जी और ठेकेदार को हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

'चिरंजीव बेटी... क्या नाम है तुम्हारा?' ठेकेदार ने ममता से उसे देखकर पूछा।

'सुनयना...' वह कुछ शरमाकर बोली।

'अरे वाह...! बड़ा अच्छा नाम है बेटी! किसने रखा?'

'मास्टरनी जी ने।'

'मास्टरनी जी ने!' उन्हें हँसी आ गई।

उसने सफ़ाई दी, 'असल में पहले मेरा नाम कौशल्या था, बाद में मास्टरनी जी ने बदलकर सुनयना रख दिया।'

'तेरी बड़ी-बड़ी आँखें देखकर रखा होगा।' वे बोले।

गाँव का वातावरण कितना सहज होता है। वह सोचने लगी। लोग अजनबियों से भी इतने अपनत्व से मिलते हैं। जैसे वर्षों से परिचित हों।

पूरे गाँव के लोग ठेकेदार के मीठे स्वभाव के क़ायल हो गए। उन्होंने यहाँ के सभी पुरुषों को सड़क पर काम दिलवाया और मुनासिब मज़दूरी भी रोज़ के रोज़। इसके बदले गाँव के लोग दूध, दही, घी सब्ज़ियाँ आदि उनके घर पहुँचा देते।

वे दोनों मिलकर अपना भोजन स्वयं पकाते थे। कभी-कभार गणेश या कोई और उन्हें रात के भोजन पर बुलवा लेता।

सुनयना के लिए उसकी माँ का सख़्त आदेश था कि ठेकेदार काका तो ठीक, परंतु उस लड़के से बातें करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अत: आते-जाते या सामने पड़ने पर सुनयना उसे देखकर भी अनदेखा कर देती थी। यद्यपि उसे महसूस होता था कि देवू उसे चोरी से देखता है। उसने कई बार सोचा कि माँ से उसकी शिकायत करे, पर शिकायत में क्या बोले, यह उसकी समझ में नहीं आता था।

यों भी इन दोनों का यहाँ आकर रहना उसे नहीं सुहाया। उसकी तो चाँदमारी हो गई। माँ अक्सर उनको कोई-न-कोई काम बता देती कि जाओ काका को चाय दे आओ, उनके लिए पानी भर लाओ, उन्हें साग दे आओ या उन्हें खाने पर बुला लाओ। यदि वह माँ से देवू की शिकायत करती, तो माँ कहती, तू जनम की कामचोर, काम न करने के बहाने ढूँढती है।

सो वह बे-मन से उनके छोटे-मोटे काम करती रही। एक दिन तो हद हो गई। वह काका के लिए चाय का गिलास लेकर कमरे में पहुँची भी नहीं थी कि

दरवाज़े से टकरा गई।

'लाटी (बेवकूफ़)... तूने अपने ऊपर चाय गिरा दी।'

यह पहला वाक्य था, जो देवू ने सुनयना से कहा। यह बात सुनकर उसने क्रोध और आश्चर्य से उसे देखा।

'चल कोई बात नहीं। बची हुई चाय यहीं रखकर जा। काका आकर पी लेंगे।'

वह बिना कुछ बोले चाय रखकर घर आ गई। रसोई में आकर उसने माँ से शिकायत की, 'पता है माँ... उस छोकरे ने मुझे लाटी कहा...।'

'क्या? क्यों...!' माँ ने पूछा और पूरी बात सुनकर हँस दी। यह तो कोई बड़ी बात नहीं!

'तभी तो मैं कहती हूँ कि हमेशा मुझे उनके काम न बताया करो।'

'ठीक है नहीं बताऊँगी।' माँ ने उसे आश्वस्त किया। कुछ दिन बाद गणेश भीमसिंह और देवू को रात के भोजन पर घर ले आया। सुनयना चूल्हे में रोटियाँ सेंक रही थी और उसकी माँ भोजन परोसने लगी।

गणेश और भीमसिंह इधर-उधर की चर्चाएँ करते रहे, किंतु देवू चुप था।

माँ ने उसे देखकर पूछा, 'बेटा... तुम हमेशा चुपचाप रहते हो। क्या यहाँ अच्छा नहीं लग रहा?'

वह धीरे से मुस्कराया, 'नहीं माँजी...ऐसी बात नहीं है।'

'हिल-मिलकर रहा करो बेटा...। ऐसा समझो यह तुम्हारा घर है और यह सुनयना तुम्हारी भुली (छोटी बहन)...।'

'हाँ जी...' देवू ने हामी भरकर सिर झुका लिया। अब माँ सुनयना से बोली, 'तुम इसे दादा कहा करो। तब इसे संकोच नहीं रहेगा। यों भी नाता लगाना अच्छा होता है।'

सुनयना ने गर्दन हिलाकर हाँ तो कह दिया, किंतु उसका मन यह मानने को तैयार नहीं हुआ। ऐसा भी कहीं भाई होता है! न गाँव का पता, न घर का, न जाति न माँ बाप का और यों ही दादा कह दो! कोई पूछे वह किस नाते से तेरा भाई लगता है, तो वह क्या जवाब देगी! न बाबा... इस तरह बिना जाने- पहचाने किसी को भाई तो नहीं बोला जा सकता। कुछ न बोलना ही अच्छा है। वैसे भी उससे बात ही कौन कर रहा है।

अचानक रसोई में रोशनी कम हुई, तो माँ ने सुनयना से लालटेन की लौ बढ़ाने को कहा।

सुनयना लालटेन पर झुककर उसकी लौ बढ़ा रही थी कि उसकी नज़र देवू से जा टकराई। मद्धम प्रकाश में क्षण-भर को दोनों की आँखें मिलीं और उनके कलेजों पर बिजली-सी गिरा गई। किसी ने लक्ष्य नहीं किया, पर दो जवान धड़कनों ने एक-दूसरे से सब-कुछ कह दिया।

अब सुनयना गुमसुम-सी रहने लगी। माँ ने उसे उनका काम बताना बंद कर दिया, तो यह भी उसे अखरने लगा। अब माँ उसके छोटे भाई बिज्जू या उससे भी छोटी बहिन शशि को भेज देती। यद्यपि ये दोनों कुछ-का-कुछ बताते और ठेकेदार काका को पुनः पूछने आना पड़ता। सुनयना प्रतीक्षा करती कि माँ वहाँ का कोई काम तो बताए, पर माँ यों ही काम चला लेती।

वह प्रेम ही क्या जो स्वयं को अभिव्यक्त करने का अवसर न दे। आते-जाते उन्हें थोड़ा बतियाने का समय मिल ही गया। सुनयना को देवू से ज्ञात हुआ कि उसके माता-पिता का बचपन में ही देहांत हो चुका था। पिता के घनिष्ठ मित्र भीम काका ने ही उसे पाल-पोसकर पढ़ाया-लिखाया और अब काम-धंधा भी सिखा रहे हैं। काका का दुनिया में कोई नहीं है। ऋषिकेश में वे दोनों साथ रहते हैं और अधिकतर काम के सिलसिले में बाहर जाते हैं।

इन चलती-फिरती मुलाक़ातों में एक मुलाक़ात ऐसी भी हुई, जिसने दोनों को सारा संयम भुला दिया।

होश में आने के बाद सुनयना सिसक पड़ी। उसे स्वयं से घिन होने लगी। देवताओं की धरती पर कैसे उसने अपना शील अपने हाथों से लुटा दिया। घर-परिवार कुटुंब सबकी मर्यादा भंग कर दी। अब वह कैसे घर में सबसे दृष्टि मिलाएगी। कैसे यह पाप छिपा सकेगी। नहीं, घर जाना ठीक नहीं। इससे तो मरना अच्छा है। इस देवदार की शाखा पर अपनी धोती का पल्ला डालकर झूल जाएगी वह या फाँस खा लेगी।

देवू ने उसे समझाया। काका से बात करके शीघ्र विवाह का आश्वासन दिया। यों भी ढाई महीने बाद उन्हें वापस ऋषिकेश जाना है, तो इस बार उनके साथ नई दुल्हन बनकर सुनयना भी जाएगी।

वह कुछ-कुछ सहज होने लगी तो देवू ने कहा, 'तुमने वह गीत सुना है न...। तेरो मेरो साथ छयो पैला जनम म (तेरा-मेरा साथ पिछले जन्म का है) हमारी प्रीत भी ज़रूर पिछले जन्म की है। इसीलिए इस जन्म में भी मिली है।'

अब सुनयना के मुख पर हल्की-सी मुस्कान उभरी और वह देवू से कुछ पहले घर की ओर चल दी।

रास्ते में उसने अपने कुलदेवता श्रीनृसिंह भगवान का स्मरण किया, माँ गौरी से क्षमा माँगी कि आज जो

भूल हुई वह भविष्य में नहीं दुहराएगी।

किंतु इतनी आसानी से माफ़ी मिलती कहाँ है। एक दोपहर सुनयना खेत में काम कर रही थी कि उसे ज़ोर की उबकाई आई। समीप ही काम करती चाची ने देखा तो वह दौड़कर उसके पास आकर उसकी पीठ सहलाने लगी।

'तेरी तबीयत ख़राब है बेटी...?'

'नहीं चाची... ऐसे ही जी ख़राब हो रहा है। उल्टी आने को लग रही है।' वह बोली।

'रात बासी भात तो नहीं खाया?'

'नहीं रात तो भूख ही नहीं लगी...' बोलते-बोलते वह फिर उकड़ूँ बैठकर उल्टी करने लगी।

चाची ने उसे ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखा और फिर धीरे से पूछा, 'सुन... किसी ने तेरे साथ उल्टी-सीधी हरकत तो नहीं की...?'

वह एकदम घबराकर बोली, 'न...न...'

उसकी घबराहट देखकर चाची समझ गई कि इस 'न' में 'हाँ' है। अब उसने सुनयना को धीरे-धीरे घर पहुँचने का निर्देश दिया और स्वयं चल पड़ी।

चाची के जाने के बाद सुनयना बुरी तरह डर गई। उसके कानों में ख़तरे की घंटी शोर मचाने लगी। वह किसी तरह पनघट पर पहुँची। शीतल जल से हाथ-मुँह धोकर अंजलि-भर पानी पीने से कुछ राहत मिली।

'क्या हुआ सुनयना...तू इतनी हरान (कमज़ोर) क्यों दिख रही है?'

किसी ने पूछा तो उसने कहा, 'कुछ नहीं...ऐसे ही ज़रा जी ख़राब हो रहा है।'

वह घर की ओर चलने लगी पर क़दम थे कि उठ ही नहीं रहे थे। रास्ता मुश्किल हो गया। किसी तरह घिसटती हुई-सी घर पहुँची, तो देखा चाची पहले से ही माँ के पास बैठी है। माँ के मुख से जैसे किसी ने पूरा ख़ून खींच लिया था।

माँ ने उसे ग़ौर से देखा, पीला पड़ा चेहरा, उलझे हुए केश, बिखरे हुए से कपड़े और अस्त-व्यस्त-सी वह स्वयं।

'ज़रा ढंग से दीदी...हाँ! ...मैं चलूँ...।' वह सुनयना को बिना देखे निकल गई।

अब माँ उठकर भीतर रसोई में जाकर बैठ गई। सुनयना भी उसके पीछे-पीछे आई और सामने जाकर खड़ी हो गई। उसकी समझ में नहीं आया क्या कहे! माँ तो घुटनों में मुँह दिए रो रही थी।

उसे सामने खड़ी समझ माँ ने मुँह उठाकर पूछा, 'सच बता, तुझे महीना कब हुआ था?'

उसने मन-ही-मन हिसाब लगाकर कहा, 'पिछले महीने तीन गति (तिथि) को या शायद उससे पहले के महीने...।'

माँ ने तपाक से उठकर उसके बाल झिंझोड़े, 'भूल गई न! सब-कुछ भूल गई तू...। घर की मान-मर्यादा, लाज-शरम सब भूल गई। तूने हमारी नाक कटा दी। इसीलिए पाला-पोसा था तुझे कि जवान होकर हमारे मुख पर कालिख पोत दे... बता मुझे चुप क्यों है...। यह जो पेट लगाकर लाई है, बता किसके साथ कुकरम किया है तूने...। कौन है वह अपनी माँ का...।'

माँ उसे मारती-पीटती पूछती रही और सुनयना मन में मनाती रही कि किसी तरह यह धरती फटे और वह उसमें जा समाए।

'बता कौन है वह? इसी गाँव का है?'

उसने सिर नीचा किए हुए ही 'न' कहा।

'तो फिर वह देवू...?'

वह चुपचाप रोती रही।

'बता... हाँ या ना।'

उसने रोते-रोते ही 'हाँ' में गर्दन हिलाई, तो माँ धड़ाम से ज़मीन पर जा बैठी।

'माँ...' उसने 'दु:ख से विह्वल होकर माँ को सँभाला तो उसने उसे परे हटा दिया, 'मत छू मुझे और अब यहाँ हमारे घर में रहो भी मत। 'जाओ वहीं चली जाओ...अपना काला मुँह लेकर हमेशा के लिए चली जाओ यहाँ से...'

सुनयना माँ के समीप बैठकर सिसकने लगी। रोते-रोते उसने माँ के पैर पकड़ लिए और लरजती आवाज़ में बोली, 'माँ... माँ मुझे मार दो... विष दे दो मुझे... फाँस लगा दो... लेकिन घर से मत निकालो...। तेरी कसम माँ...मैं अब ज़िंदा नहीं रहना चाहती...मैं अब ज़िंदा नहीं रहूँगी...फाँस खा लूँगी जैसे उस दिन खाने वाली थी...।'

माँ का दिल तेज़ी से धड़क उठा। उसके रोएँ काँपने लगे। यह क्या कह रही है छोकरी...! पाप हुआ...पर इसका कोई प्रायश्चित भी तो होगा। कोई हल तो निकलेगा।

उसने पास बैठी सुनयना को गोद में खींच लिया, 'लाटी...कैसी दुर्बुद्धि लगी थी तुझे...। तूने कैसे अपने घर की इज़्ज़त मिट्टी में मिला दी...। चल जो होना था वह तो हो गया, पर तू यह बात किसी को बताना मत और सुन... सपने में भी मरने की बात मन सोचना। वरना तेरी माँ एक

पल भी जीवित नहीं बचेगी...।'

सुनयना माँ के गले लगकर फफक पड़ी। यद्यपि उसे देवू पर पूरा विश्वास था, पर माँ को कैसे बताए!

माँ ने उसे अलग किया और उसका सिर सहलाते हुए बोली, 'हम कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेंगे। जाओ...तुम हाथ-मुँह धोकर खाना खा लो। भूख लग गई होगी...।'

सुनयना अंतर्मन तक आँसुओं से भीग उठी। सच ही कहा गया है, माँ की बराबरी भगवान भी नहीं कर सकता।

यद्यपि माँ ने उसे घर से बाहर निकलने से मना कर दिया। फिर भी जैसा कि गाँव का स्वभाव होता है, यह सूचना चारों ओर फैल गई कि सुनयना को दिन चढ़े हैं। सबके संदेह का केंद्रबिंदु देवू बन गया। भीम काका ने जो नाम कमाया था, वह उस कमीने छोकरे ने डुबो दिया। सब मन-ही-मन उस पर मुट्ठियाँ कसने लगे। उसका कुछ प्रबंध करने की बात सोचने लगे।

गाँव में सबके मुँह के भीतर-ही-भीतर पंचायत बिठाने का निर्णय हो गया।

शाम को गणेश के दुकान से घर पहुँचने के मध्य सारी बातें उस तक पहुँच चुकी थीं। वह अपने कमरे में पहुँचते ही कुर्सी पर धराशायी हो गया। साथ की गुमटी (छोटा कमरा) में सुनयना द्वार बंद किए बैठी थी। कुछ देर बाद उसे माँ के आने का आभास हुआ और उसके साथ ही दोनों के झगड़े का।

सुनयना के कानों में माता-पिता के कलह के दौरान पंचायत शब्द पड़ा, तो वह बैचेन हो उठी।

गाँव में पंचायत बैठेगी, तो वह सबके बीच बैठी कैसे सबकी दृष्टि का सामना करेगी! पिता से आँखें कैसे मिलाएगी! पंचायत का फ़ैसला क्या निकलेगा! सोच-सोचकर उसकी व्यग्रता बढ़ती गई। माँ की सोचकर फाँस भी नहीं खा सकती, वरना मन तो यही था।

उसने मन में इष्टदेव को याद किया। उसे लगा माँ गौरी उससे कह रही है कि जो तुम्हारे माता-पिता कहें, तुम वही करना।

रात के समय माँ उसे खाना देने आई और बताया कि शीघ्र उसके पिता कोई रास्ता निकालेंगे। सुनकर वह आश्वस्त हुई। अब जो पिता कहेंगे वही होगा।

और सचमुच पिता ने रास्ता निकाल दिया। आधी रात को अभी उसकी आँख लगी ही थी कि पिता धीरे से उसके कमरे में आए और उसे सोते से जगाया। वह घबराकर उठी।

'चलो मेरे साथ...' पिता ने बहुत धीरे से कहा।

'कहाँ...?' उसके मुँह से निकला।

'जहाँ मैं कहूँ।'

वह शीघ्र उठी और ख़ुद को सँभालती हुई डरते-डरते पिता के पीछे चल दी। पिता भीम काका के कमरे पर पहुँचकर रुक गए।

सुनयना ने झुकी आँखों से देखा, काका का सामान बाँधा जा चुका था। उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

काका ने रुँधे स्वर में कहा, 'भाई जी... एक बार फिर सोच लीजिए, आधी रात में लड़की की फ़ज़ीहत कहाँ करें। कहाँ ले जाएँ इसे...।'

पिता कठोरता से बोले, 'कहीं भी ले जाओ। चाहे खाई में ढकेल दो या गाड़ी के नीचे डाल दो, पर यहाँ से हमारे घर और गाँव से दूर ले जाओ...।'

सुनयना का शरीर काँपने लगा। उसका हृदय डाल से सहसा टूटी पत्ती की तरह अकेला हो गया। वह समझ गई कि पिता ने उसे अपने दिल से ही नहीं, बल्कि अपने घर, गाँव, समाज सबसे बाहर निकाल दिया है।

काका ने शर्मिंदा होकर हाथ जोड़े, 'आपका इस तरह क्रोध करना बहुत स्वाभाविक है, लेकिन आप ही बताइए हम अपनी बहू को ऐसे ही कैसे ले जाएँ। दो... चार दिन में विवाह करके सम्मान से...।'

'अजी सम्मान बचा कहाँ है। गाँव वाले सब जान गए हैं। भलाई इसी में है कि आप इसे लेकर अभी चले जाइए। शहर में क्या शादियाँ नहीं होतीं!'

काका ने पिता को मनाने का बहुत प्रयास किया। इन बच्चों से हुई ग़लती पर इन्हें क्षमा करने की विनती की, पर पिता टस-से-मस न हुए।

काका को चोरों की तरह जाना अखर रहा था। उन्होंने अंतिम प्रयास किया, 'भाभी जी कहाँ हैं...। उनकी भी राय सलाह ले ली जाती और हम उनसे क्षमा भी माँग लेते।'

पिता ने इंकार किया, 'नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं।' आख़िर काका ने हथियार डाल दिए। उन्होंने सुनयना के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'चलो बेटी...।'

कहाँ... सुनयना ने पूछना चाहा, पर उसके होंठ जैसे चिपक गए। उसका जी ज़ोर-ज़ोर से रोने को हुआ, किंतु आँखें एकदम कोरी रह गईं। आँसू कहीं सूख गए।

काका और देवू सामान उठाकर चलने लगे, पर सुनयना अपने स्थान पर खड़ी रह गई। उसके पाँव के नीचे की ज़मीन पूस की बर्फ बन गई। पैर उसी में जमे रह गए। पिता ने उसे जाने का संकेत किया, पर उसका

मन माँ पर चला गया। माँ उसे इस तरह घर से नहीं निकाल सकती। ज़रूर यह सब माँ की जानकारी में नहीं हो रहा है।

बड़ी कठिनाई से उसके बोल फूटे, 'माँ कहाँ है...? मुझे माँ के पास जाना है...।'

'बिल्कुल नहीं,' उसके पिता दाँत भींचकर गरजे, 'जब तक वह अनजान है तुम यहाँ से निकल जाओ। उसके आने का मतलब है पूरे गाँव में शोर मचना...।'

विवश काका ने उसका सिर सहलाकर कहा, 'अभी तुम हमारे साथ चलो बेटी...। कुछ दिन बाद अपनी माँ से मिलने चली आना।'

'ख़बरदार... कान खोलकर सुन ले...! जो तू कभी यहाँ आई तो मेरा मुर्दा देखेगी। तुझे हम सबकी सौगंध... न तू कभी इधर आना, न अपनी कोई ख़बरसार भेजना। आज तक हमारे ख़ानदान और इस गाँव में तेरी तरह किसी ने नाक नहीं कटाई थी। आज से तू हमारे लिए मर गई और हम तेरे लिए...।'

पिता के शब्दों के प्रचंड वेग के समक्ष वह ठहर न सकी। काका और देवू सन्न रह गए। फिर सबसे आगे काका ने तेज़ी से क़दम बढ़ाए, देवू उनके पीछे चला और सुनयना की हालत ऐसी हो गई जैसे अपने पीछे बाढ़ देखकर सरपट भाग जाना चाहती हो। अंततः वे कमरे से बाहर निकलकर नीचे देखते हुए रास्ते लग गए।

सुनयना मुँह में पल्ला दबाकर यंत्र-सी चलने लगी। रात बहुत घनी अँधेरी थी। जाने अमावस आने को थी या अपने को समेटकर जाने की तैयारी कर रही थी।

सड़क गाँव तक आ चुकी थी। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद इन्हें एक जीप में लिफ़्ट मिल गई। सुनयना पूरे रास्ते सिर झुकाए मुँह दबाए रोती रही। उसके निकट बैठे देवू का मन करुणा से भरा स्वयं को अपराधी समझ रहा था। चाह रहा था किसी तरह सुनयना को चुप कराए, किंतु साहस नहीं होता था।

ऋषिकेश घर पहुँचकर काका ने सुनयना से कहा, 'बेटी...हमें तुम्हारे लिए बहुत दुख है, किंतु अब चिंता मत करो। आज से मुझे पिता की तरह समझना। हम भरसक तुम्हारे लिए कोई कमी नहीं करेंगे। तुम सब-कुछ भूलकर ख़ुशी-ख़ुशी इस नई दुनिया को अपना लो। इसी में हम सबकी भलाई है। मैं ठीक कह रहा हूँ न...।'

'जी काका...' वह सिसकती हुई बोली।

'अच्छा बेटा... अब रोना-धोना बंद करो। शाम हो गई है, तुम अपने घर को देखो, समझो। मैं बाज़ार से सामान लेकर आता हूँ। सुबह हम तीनों मंदिर चलेंगे।' काका के जाने के बाद देवू ने भी अपना दुःख प्रकट करके उसे सदा प्रसन्न रखने का आश्वासन दिया।

जल्दी ही काका सामान लेकर आ गए और सुनयना से बोले, 'बेटी, यह सामान खोलकर सँभाल दो। इसमें रात का खाना और मंदिर के लिए पूजा का सामान है। तुम्हारे लिए नई साड़ी रखी है। जाने कैसी होगी...। पर चलो, तुम सुबह जल्दी नहा-धोकर पहन लेना...।'

सुबह तड़के तीनों मंदिर गए। काका ने दोनों का विवाह कराया। दोनों ने काका के चरण स्पर्श किए।

'परमात्मा तुम दोनों को सदा ख़ुश रखे। तुम पर कभी किसी दुःख का साया न पड़े...।' बोलते-बोलते काका की आँखें भीग गईं।

घर लौटने पर भी तीनों गुमसुम थे। अपने आपमें खोए-खोए। मायके की याद में सुनयना का दिल तड़प रहा था। इस समय माँ पर क्या बीत रही होगी। छोटे भाई-बहिन क्या सोच रहे होंगे। ये कयास उसे दर्द से मथ रहे थे। देवू अलग ग्लानि का अनुभव कर रहा था। उसके कारण एक हँसती-खेलती लड़की का घर सदा के लिए छूट गया। एक इज़्ज़तदार परिवार गाँव की नज़रों में गिर गया। ग़लती किसने की, दंड किसे मिला।

उनकी मायूसी महसूस कर काका उठे और सुनयना को मिठाई का डिब्बा पकड़ाते हुए मुस्कराकर बोले, 'ए नौनी (लड़की) अपने ब्याह की ख़ुशी में हमें मिठाई तो खिला...। कंजूसी क्यों करती है! सारी मिठाई चुपके से ख़ुद ही खाएगी क्या...!'

काका की बात पर दोनों को हँसी आ गई। सुनयना ने शीघ्र काका के चरण छूकर उन्हें मिठाई खिलाई और फिर देवू को देकर स्वयं भी ली।

'देख बेटी... जो होना था हो गया। अब यह घर तेरा है। इसे और हम दोनों को सँभालने की ज़िम्मेदारी तेरी है। तू ख़ुश रहेगी तो हम भी ख़ुश रहेंगे, वरना हमें लगेगा कि हम बहुत बुरे हैं, तेरा ध्यान नहीं रखते।'

'नहीं काका... आप लोग बहुत अच्छे हैं। मैं अपनी ओर से आपको शिकायत का मौक़ा नहीं दूँगी और हमेशा ख़ुश रहूँगी।'

'शाबाश बेटी...मुझे तुमसे यही उम्मीद थी।'

उसने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि कभी इनके सामने मायके का नाम भी नहीं लूँगी। नाम लेकर करना भी क्या है! जब पिता ने इतनी बेरहमी से धक्का दे दिया, माँ को बताए बिना। माँ की याद आते ही कलेजे में हलचल मचने लगी, पर इस दुःख का आभास भी होने देना पाप होगा।

अब वह कमर कसकर घर सँभालने में जुट गई।

उधर गाँव में पौ फटते ही शोर मच गया कि सुनयना भाग गई। ठेकेदार भीम और देवू का भी कुछ पता नहीं। ज़रूर उन्हीं के साथ भागी होगी। अपने घर की लाज डुबोने वाली दुष्ट औलाद...।

सुनयना की माँ अलग बदहवास-सी इधर-उधर डोलती रही और रोते हुए बड़बड़ाती रही। कहाँ गई मेरी लाडली बेटी! इस हालत में कहाँ चली गई वह...! अरे लोगो, जाकर जंगल में देखो, उसने फाँस तो नहीं खा ली।

वह चिल्लाती रही, किंतु पिता कमरे से बाहर नहीं निकला। मुँह पर चादर लपेटे पड़ा रहा।

गाँव में अनेक प्रकार की चर्चाएँ चल पड़ीं। निंदा का पिटारा खुल गया। ठेकेदार को सज्जन के वेश में शैतान और देवू को छटे हुए बदमाश की उपाधियों से नवाज़ा जाने लगा।

किसी ने एक उम्मीद जताई, यदि यह कुकरम देवू ने किया है, तो क्या वह सुनयना से ब्याह करेगा और ठेकेदार उसे बहू के रूप में अपनाएगा। किसी दूसरे ने अपनी आशंका से इस आशा को झुठला दिया, 'अजी हाँ... ज़रूर बनाएगा बहू... अरे छिनाल बनाएगा छिनाल...। बूण पहुँचकर पहले वही सोएगा उसके साथ, तब जाकर वह...देवू...। यह भी तो हो सकता है कि यह सब उसी का किया-धरा हो! देवू व्यर्थ बदनाम हो गया हो। अरे... देख लेना दोनों के दोनों उसे खा-चाटकर बेच देंगे, तब अक्ल ठिकाने आएगी सुनयना की। तब जानेगी गाँव और बूण का अंतर और रोएगी ख़ून के आँसू...! पर तब रोने से होगा भी क्या..., रोया करे। किसने कहा था कि घर छोड़कर जाओ। न जाती तो क्या होता! पंचायत बैठती और उसका फ़ैसला मानती तो अपनी छीछालेदर से बच जाती। तभी तो कहते हैं-विनाश काले विपरीत बुद्धि...।

सुनयना के पिता को ज्ञात था कि गाँव के लोग उन्हें स्वयं कोई निर्णय लेने का अधिकार नहीं देंगे। वे पंचायत बिठाए बिना नहीं मानेंगे। उसकी सबसे बड़ी और प्रिय संतान पंचायत में क्या कहती। कैसे सबका सामना करती। उसने सोचा, उससे चूक हो गई। अपनी चहेती बेटी का गला घोंट देता, तो एक बार में ही छुट्टी हो जाती। सारी उमर दिल में यह तो न चुभता कि कहाँ होगी? कैसी होगी...? अब तो यह ज़िंदगी अभिशाप बन गई है। दो औलादें और न होतीं, तो वह जोगी बन जाता। वे दोनों भी बड़ी होकर जाने क्या गुल खिलाती हैं, पर अभी तो उन्हें पालना-पोसना है।

दिन इसी तरह निकलने लगे। सुनयना के माता-पिता अपनी पीठ पर व्यंग्यबाण झेलते हुए मूक बने दिन ठेलने लगे। सुनयना अपनी गृहस्थी में रम गई। काका और देवू उसका बहुत ध्यान रखते ताकि उसे अपने घर की याद न सताए। वह भी उनके समक्ष अपनी व्यथा प्रकट न करती, पर उसका कोई दिन ऐसा न बीतता, जब वह माँ और मायके की याद में चुपचाप आँसू न बहाती हो।

सात माह बाद सुनयना की बेटी हुई। काका ने उसे बड़े प्यार से मालती नाम दिया। दो वर्ष बाद उसका छोटा भाई भी आ गया। उसका नाम काका ने नरेंद्र रखा। देवेंद्र का पुत्र नरेंद्र।

बच्चों के पालन-पोषण में दिन यों पंख लगाकर उड़ने लगे कि सुनयना स्वयं को भूल गई। न अपना होश रहा, न मायके की बातें याद करने का अवकाश। काम के दौरान कभी कुछ याद आया भी, तो वह काम में ही बिला गया।

सुनयना ने रोटियाँ बनाते-बनाते उँगलियों में गिना, साढ़े नौ वर्ष पूर्व काका को अपने काम से पहाड़ जाना था। जाने से दो दिन पहले उन्होंने सुनयना से पूछा था, 'बेटी...मुझे तेरे मायके से आगे के गाँव में जाना है। तू चलेगी?'

वह धक से रह गई थी। पाँच वर्ष हो गए थे नैहर छूटे हुए। अब तक वहाँ से किसी ने सुध तो ली नहीं, अब वह कैसे जाए।

'सोच ले बेटी...! तेरी इच्छा है तो चल ले...।'

'काका...आप तो जानते हैं, पिताजी ने सौगंध दे रखी है।'

काका ने समझाया, 'बेटी... माँ-बाप अपने बच्चों के अपराध क्षमा कर देते हैं। एक बार मेरे कहने से चलो। वे तुम्हें देखकर खुश ही होंगे।'

'नहीं काका...हिम्मत नहीं होती...। पिताजी ने जो धमकी दी है कहीं उस पर उतर आए तो...!'

'ऐसा कुछ नहीं होगा। सुनयना...। कहो तो हम सब चलकर उनके पैरों पर गिर पड़ें। मुझे पूरी उम्मीद है कि वे हमें माफ़ कर देंगे।' इस बार देवू ने कहा।

'नहीं नहीं...तुम पिताजी का ग़ुस्सा नहीं जानते...। सबका जाना ठीक नहीं है।'

'तो फिर अभी तुम ही अकेली जाकर देख लो...।'

'मैं अकेली...! फिर इसे कौन सँभालेगा...।' उसने दो वर्ष के नरेंद्र की ओर संकेत किया।

'अरे...अभी एक दिन के लिए ही तो जाओगी,

मैं देख लूँगा।' देवू ने कहा।

फिर भी सुनयना ने इंकार कर दिया। हृदय के भीतर प्रचंड तूफ़ानों का बवंडर उठ रहा था, पर उसने सायास उन्हें वहीं रोक दिया।

इंकार तो कर दिया, किंतु अब उसे बेचैनी होने लगी। एक बार जाने में हर्ज़ ही क्या है! घर न जाऊँ, पर उसे दूर से तो देख ही सकती हूँ।

अंतत: वह काका के साथ जाने को तैयार हो गई। वह धड़कते दिल से काका के साथ बस में बैठी और खिड़की से बाहर देखने लगी।

'बेटी... तुम सीधे अपने घर जाओगी न!' काका ने पूछा।

'पता नहीं काका...' उन्होंने आश्चर्य से देखा, 'मतलब? अभी कुछ कह नहीं सकती...।'

'अरे तो कब लौटोगी? कैसे लौटोगी?' उन्हें चिंता हुई।

'मैं बस में बैठ लूँगी काका...। सीधा रास्ता तो है।'

'मुझे आज रात वहीं रुकना होगा। तुम कहो तो कल मैं तुम्हें लेने घर पहुँच जाऊँ...।'

'नहीं काका...आप नहीं। चिंता मत कीजिए। मैं घर चली जाऊँगी।'

'हाँ बेटी...व्यर्थ इधर-उधर मत घूमना।'

'जी काका...।'

बहुत धीरे-धीरे रास्ता कटा और उसके गाँव से पहले पड़ने वाला पंदेर (पनघट) आ गया। उसका सारा बदन थरथरा उठा। अब उसके घर का गुठ्यार (आँगन) आने वाला है, जो कि सड़क से साफ़ दीखता है। वह बिना पलकें झपकाए उस ओर देखने लगी। जैसे ही गुठ्यार दिखा, उसने खिड़की से मुँह बाहर निकालकर नीचे देखा। लगा जैसे वहाँ खड़ी माँ ऊपर सड़क की ओर देख रही है। बस तो सरपट भाग निकली, पर वह बावरी-सी उधर ही देखती रही। काका उसकी पीड़ा महसूस कर व्यथित हो उठे, किंतु वे क्या कर सकते थे।

सुनयना के गाँव से दो सौ मीटर आगे बस स्टैंड था। वह वहाँ उतर गई और काका को आश्वस्त किया कि वह घर ही जाएगी।

धूल उड़ाती बस चली गई और उस गुबार में उसे पिता का नफ़रत-भरा क्रोधित चेहरा दिखाई दिया। उसे भय हुआ कि वह सचमुच घर पहुँच गई और वचन के पक्के पिता ने अपने जीवन का अंत कर लिया तो...। वह इतना बड़ा जोख़िम उठाने को तैयार न थी। अब तक उन सबका जीवन भी ढर्रे पर आ गया होगा। व्यर्थ शांत जल में कंकड़ क्यों फेंके!

और वह सड़क पार कर वापसी की बस में बैठ गई। उसने चोर नज़र से यात्रियों को देखा। कोई परिचित चेहरा तो नहीं है! नहीं! वह निश्चिंत हो गई। उसे स्वयं के पहचाने जाने का भय नहीं था। कहाँ वह पाँच वर्ष पूर्व की दुबली पतली सुनयना और कहाँ यह लंबी-चौड़ी तंदुरुस्त महिला। पहनावा भी बदल चुका था। अब वह शहरों की तरह उल्टे पल्ले की साड़ी बाँधती थी।

इस बार वह दाहिनी ओर सीट पर बैठी ताकि पुन: अपने आँगन की एक झलक पा सके, किंतु भीगी आँखों के धुँधलके में वह सूना आँगन कब गुज़र गया। पता ही न चला।

घर पहुँचकर जब उसने देवू को अपनी आज की यात्रा के विषय में बताया तो उसने कहा, 'सुनयना... एक बार तुम्हें अपने घर जाना चाहिए था। मुझे पूरा विश्वास है कि वे तुम्हें अवश्य अपना लेते।'

'मेरी हिम्मत नहीं पड़ी। मन तो बहुत हुआ, पर बार-बार आँखों के सामने बाबा का चेहरा और उनके बोल पैरों की बेड़ियाँ बन गए।'

'पर चलो... इस बहाने तुम्हें अकेले आने-जाने का अंदाज़ तो हुआ। भविष्य में जब भी अवसर मिले... चली जाना।' सुनयना ने हामी भरकर पूछा, 'अरे...मैं तो भूल ही गई। बच्चों ने तुम्हें तंग तो नहीं किया...?'

'बिल्कुल नहीं,' उसने मुस्कराकर कहा, 'दोनों बड़े आराम से खेलते रहे...। बस मैं हर घंटे उनकी पसंद की चीज़ें दिलाता रहा...।'

'मतलब? क्या दिलाया तुमने?' उसका माथा ठनका। ज़रूर देवू बाज़ार से ऊटपटांग वस्तुएँ ले आया होगा।

'यही...बिस्कुट, क्रीमरोल, केक और थोड़ी चॉकलेट...।'

'हे भगवान...' उसने माथा पीटा, 'यानी पैसे का भी चूरा और पेट भी ख़राब... और जो मैं खाना बना गई थी वह अलग बर्बाद...।'

'बर्बाद क्यों? अब खा लेंगे। वैसे भी तुम थककर आई हो...।'

'फिर भी मैं कुछ-न-कुछ बना लेती...। चलो, अब उसे ही गर्म करूँगी। पहले हाथ-मुँह धो लूँ...।'

देवू की हरकत पर वह मन-ही-मन हँसती रही। अक्सर ऐसा ही होता है। वह बाज़ार से अंट-शंट चीज़ें ले आता है और बच्चे भोजन छोड़कर उधर ही लपकते हैं।

अगले दिन काका ने घर पहुँचकर सुनयना को

देखा तो चैन की साँस ली, पर पूरी बात जानकर उन्हें बहुत निराशा हुई।

अब सुनयना का यह नियम बन गया कि साल छः महीने में एक बार गाँव की ओर अवश्य जाती और अगली बस से वापस लौट आती। एक बार वह गंगा दशहरा के कौथीग (मेले) भी गई। हर वर्ष लगने वाले उस कौथीग में आस-पास के गाँववाले ख़ूब सज-धजकर पहुँचते थे। पुरुष अच्छे वस्त्र और चमचमाते जूते पहनते थे, तो स्त्रियाँ शीशफूल, मुर्खी (कानों में छः छः छेदों पर पहने गए कुंडल), बुलाक (नाक के मध्य पहनने वाला गहना), गुलूबंद (गले में कसा चौड़ा हार), पौंची (भारी कंगन) जैसे आभूषणों से लदी-फँदी पहुँचती थीं। ये सारे गहने सोने के होते थे, तो लंबे चंद्रहार, बाजूबंद और पाज़ेब चाँदी के।

सुनयना पहुँची तो कौथीग शबाब पर था। चारों ओर भूड़े (कचौरी), अरसे (चावल और गुड़ से बनी पहाड़ की मिठाई), पकोड़े और जलेबियों की बहार थी। मेले के बहाने लोगों का मेल-मिलाप अनवरत चल रहा था। जो महीनों से नहीं मिल पाते थे, वे मेले में अवश्य मिल जाते थे।

सुनयना घूम-घूमकर लोगों को देखती रही। कुछ परिचित चेहरों को देख वह छिप गई। पेड़ की आड़ से वह अपनों को ढूँढती रही, किंतु उसकी आँखें प्यासी रह गईं। माँ, पिता, भाई, बहिन में से कोई नज़र नहीं आया। दुःखी मन से उसने तय किया कि अब कभी कौथीग नहीं आएगी। व्यर्थ ही घर जाने के लिए अलग देर हो गई। उसने शीघ्रता से वापसी की बस पकड़ ली।

वह हर सफ़र में सोचती कि इस बार अवश्य घर जाएगी, किंतु हर बार ख़ाली हाथ वापस लौट आती। पता नहीं फिर जाती क्यों है! यही स्थिति रही, तो जाने कभी माँ से भेंट हो भी सकेगी या यह अभागा जनम यों ही गुज़र जाएगा।

इधर मालती ने लक्ष्य किया था कि माँ वर्ष में एक-दो बार किसी लंबे सफ़र पर निकलती है। सुबह के पाँच बजे घर से निकलती है और शाम को छः बजे से पूर्व नहीं लौटती। पूछने पर माँ ने टाल दिया था।

एक बार माँ की अनुपस्थिति में उसने पिता से पूछा तो उन्होंने बताया कि वह अपने गाँव की किसी बहिन से मिलने हरिद्वार जाती है।

'कहाँ है माँ का गाँव...? माँ की वह बहिन कभी यहाँ क्यों नहीं आई?'

उसने एक साथ दो प्रश्न पूछे तो देवू सकपका गया, अपने झूठ को क्या आधार दे। पर कुछ बताना तो पड़ेगा ही।

'वह बीमार रहती है इसीलिए नहीं आ पाती...। अच्छा ज़रा चाय बना दो बेटी...।'

मालती समझ गई कि उसे टाला जा रहा है, परंतु उसने पीछा नहीं छोड़ा, 'पिताजी...बताइए न...माँ का गाँव कहाँ है?'

'मुझे क्या पता! तुम उसी से क्यों नहीं पूछतीं?'

'पूछा था, पर माँ बहुत नाराज़ हुई थी। उल्टे उसने कहा था कि कोई ज़रूरी है कि उसका भी मायका हो।'

देवू के मन में टीस उठी, उसने बेटी के सिर पर हाथ रखकर कहा, 'जब तुम्हारी शादी हो जाएगी, तब तुम्हारी माँ तुम्हें स्वयं सब बता देगी।'

'वाह... तो क्या अपने ननिहाल के विषय में जानने के लिए मुझे शादी करनी पड़ेगी...।'

पास बैठे पत्रिका में व्यस्त काका सब सुन रहे थे। अब उनसे रहा नहीं गया। वे देवू से बोले, 'बेटा... हमारी बिटिया अब बड़ी हो गई है। उसे सब-कुछ बता देना चाहिए।'

अब वह काका के पास आ गई, 'देखिए न दादा जी... मैं कुछ पूछती हूँ, तो माँ ग़ुस्सा करती है और पिताजी टाल देते हैं...। ये अब भी मुझे बच्ची समझते हैं।'

काका को लगा, मालती ठीक कह रही है। बी॰एड॰ करने के बाद वह एक विद्यालय में पढ़ा रही है। साल दो साल में उसका विवाह भी हो जाएगा। फिर उसे अनभिज्ञ क्यों रखा जाए!

काका से रहा नहीं गया। उन्होंने मालती को अपने समीप बैठाकर सब-कुछ बता दिया। सब जानकर उसके दु:ख और आश्चर्य का पारावार न रहा। एक छोटी-सी भूल ने माँ से उसका नैहर सदा के लिए छुड़वा दिया। वह बेचारी सारी उम्र अपनी माँ, मातृभूमि, अपने पिता, भाई, बहिन सबको याद कर रोती रही। लंबा सफ़र तय करके इतना कष्ट उठाते हुए वहाँ जाती रही, दूर से अपना आँगन देखती रही, पर एक बार उस आँगन में उतरने का साहस न जुटा सकी।

अपने आँसू पोंछकर वह काका और पिता से बोली, 'जो हुआ सो हुआ। अब मैं माँ के इस दु:ख का अंत करूँगी। उसका खोया हुआ नैहर उसे दिलाकर रहूँगी।'

काका और पिता उससे सहमत हो गए। उन्होंने तय किया कि शीघ्र ही अवसर देखकर सुनयना से बात की जाएगी और तब गाँव पहुँचने का कार्यक्रम बनाया जाएगा।

मालती को दो दिन तक अवसर नहीं मिला, तो वह बेचैन हो उठी। आख़िर उसने काका को गाँव चलने के लिए मना लिया और माँ को बताए बिना वे दोनों बहाने से निकल पड़े।

काका के साथ बस में बैठते ही काका के मन में तरह-तरह के विचार आने लगे। जाने ननिहाल में कौन मिले और किस तरह मिले!

'दादाजी... मेरा पेट घूम रहा है...।'

मालती बोली तो उन्होंने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया, 'थोड़ी देर आँख बंद कर लेटी रहो बेटा. .. अभी ठीक हो जाएगा।'

उसने आँखें बंद कीं तो आँसू पलकों के बाहर छलक पड़े। उमड़-घुमड़ पेट में नहीं मन में थी। एक ये दादाजी हैं। रिश्ते में उनके कुछ नहीं लगते, लेकिन सदा इन्होंने ही सहारा दिया। उसने तो आँखें ही इनकी गोद में खोली हैं और एक वे अपने नाना हैं, अपनी संतान की कभी सुध ही नहीं ली। अपने अहं के कारण। केवल अपने अहं के कारण ही तो। वरना माँ पिताजी से जो ग़लती हुई थी उसे उन्होंने सुधारकर समाज में सम्मान जनक स्थान भी तो बनाया। सोचते-सोचते उसकी आँख लग गई।

ननिहाल से पहले पड़ने वाले पनघट पर वह उठी, तो काका ने बताया कि अब माँ के घर का आँगन दिखने वाला है। वे उतरने की तैयारी करने लगे।

गाँव पहुँचकर घर ढूँढने में काका को कोई दिक्कत नहीं हुई। सब-कुछ पहले जैसा था। उस समय गाँव सुनसान था। सब खेतों में धान रोपने गए होंगे। काका ने सोचा और मालती से कमरों के भीतर जाकर देखने को कहा।

एक कमरे के भीतर मालती को खटोले में लेटी एक कमज़ोर बूढ़ी काया दिख गई। उसने समीप जाकर उसके चेहरे को देखा तो उस पर माँ की छाया दिखाई दी। वह समझ गई यही उसकी नानी है।

अपनी व्याकुलता को सँभालते हुए वह उसके पास पहुँची तो बुढ़िया उठकर बैठ गई।

'कौन हो तुम बेटा...?'

मालती ने उसके चरण छुए।

'तुम किससे मिलने आई हो नौनी...?'

'तुमसे।' उसकी आवाज़ काँपी।

'मुझसे! पर मैं तो तुम्हें नहीं पहचान रही बाबा...।'

'क्या कहूँ... क्यों नहीं पहचान रही नानी? तुम मेरी नानी हो और मैं तुम्हारी नातिन...।'

'नातिन...?' वह आश्चर्य से अपलक उसे देखती रही।

'नहीं समझीं? मैं तुम्हारी बेटी सुनयना की बेटी हूँ नानी...।'

'सुनयना...सुनयना? कहाँ है सुनयना?' बुढ़िया बावरी-सी उसे देखने लगी। उसका मुँह खुला का खुला रह गया। वह बिना हिले-डुले मूर्ति-सी बैठी रही।

मालती ने उसके घुटनों पर हाथ रखकर कहा, 'मेरा विश्वास करो नानी। मैं तुम्हारी नातिन हूँ। क्या मुझ पर मेरी माँ की अन्वार (झलक) नहीं आ रही, जैसी कि

तुम पर आ रही है।'

अब नानी अपनी नातिन से लिपट ज़ार-ज़ार रोने लगी। रोते-रोते बड़बड़ाने लगी, 'सुनयना...मेरी फतेली (लाडली)...तू मुझे छोड़कर कैसे भाग गई! तूने नहीं सोचा...तेरे पीछे मेरी क्या हालत होगी? मैंने तेरे लिए कितनी बढ़िया हँसुली और गुलूबंद बनवा रखे थे... और तू बिना बताए चली गई...। बेटी... सच बताना, तेरी माँ को कभी मेरी याद नहीं आई! उसने अपने मायके को कैसे बिसरा दिया। कभी तो कोई ख़बरसार भेजी होती...।'

नानी जब कुछ शांत हुई तो मालती ने उसे पूरी बात बताई। यह जानकर कि वह भागी नहीं थी, उसे निकाला गया था और अक्सर वह दूर से अपने आँगन की झलक भर पाने को कष्टमय यात्रा तय करती थी, नानी का दु:ख बढ़ गया।

नाना के विषय में पूछने पर ज्ञात हुआ कि तीन वर्ष पूर्व उनका देहांत हो चुका है।

'नानाजी ने ठीक नहीं किया नानी... कि लोकलाज के डर से माँ को आधी रात में घर से निकाल दिया। यदि काका और पिता साथ न देते तो उसका क्या होता।'

कुछ देर बाद मालती के मामा-मामी आ गए। काका और सुनयना से मिलकर और पूरी बात जानकर वे भी बहुत दु:खी हुए।

मालती ने उनसे सारे हालचाल मालूम किए। मामा-मामी के दो बेटे विद्यालय गए हुए हैं। मौसी पास के गाँव में रहती है। उसका एक बेटा और एक बेटी है। अपने संपूर्ण परिवार से मुलाक़ात होना कितना सुखद अहसास है। मालती ने सोचा, 'यदि यह सब पहले हो गया होता, तो उनका माँ के साथ गाँव आना-जाना लगा रहता। कितना अच्छा है यहाँ! ऊँचे-ऊँचे पहाड़, शीतल झरने, ख़ुशगवार मौसम, अच्छी आबो-हवा, मानो प्रकृति ने अपना सौंदर्य खुले हाथों लुटा दिया हो।

शाम के समय काका अपने काम से दूसरे गाँव चले गए, तो मालती की नानी आँगन के ऊँचे भाग पर खड़ी होकर गाँव के लोगों को संबोधित करने लगी, 'ऐ छोटी नीयत के लोगो... तुम सबके मन में पाप है। इसलिए दूसरों को भी पापी समझते हो। तुम किसी का भला सोच ही नहीं सकते। तुम्हारी नज़रों में कोई भी शरीफ़ नहीं हो सकता। तुम्हें कुछ मालूम भी है कि मेरी बेटी ख़ुद नहीं भागी। तुम लोगों के डर से उसके पिता ने उसे घर से निकाल दिया। वह भी आधी रात के समय। जिस ठेकेदार भीम को तुम पापी समझते रहे, लांछन लगाकर ज़हरीले तीर चलाते रहे, वह सुनयना को यहाँ से अपनी बहू बनाकर ले गया और बेटी बनाकर रखा...। अगर पिता ने बेटी को यहाँ न आने के लिए सौगंध न दी होती, तो वह कब की हमारी सुध लेने आ जाती। उससे उसका मायका छीनने वाले तुम लोग हो... भगवान तुम्हें कभी माफ़ नहीं करेगा।'

बुढ़िया बड़बड़ाती रही, पर किसी का साहस उसे रोकने का न हुआ। जो अभी तक काका के साथ मालती के आने पर मुँह दबाकर हँस रहे थे, वे सामने आने का साहस नहीं जुटा सके। उन्हें अपने छोटेपन पर बहुत शर्म आई, किंतु अब क्या हो सकता था।

कमरे में सोई मालती की नींद नानी के चिल्लाने से खुली, तो बाहर आकर वह उसे चुप कराने लगी। बीती बातों को भूलकर सबको क्षमा करने की प्रार्थना करने लगी।

अब सारे लोग मालती के पास क्षमा-याचना के लिए आने लगे। वे मन में भयभीत हो रहे थे कि कहीं ईश्वर उनके किए का दंड उनके बच्चों को न दे।

मालती सबसे सहज भाव से मिली। सब उसके हँसमुख और ममतालू स्वभाव से प्रभावित हो गए।

'अभी कुछ दिन रहोगी बेटी?'

किसी ने पूछा तो मालती ने बताया, 'नहीं मामी जी, कल हम नानी को लेकर जा रहे हैं, फिर कुछ दिन बाद माँ को साथ लेकर आएँगे।'

'हाँ बेटी... हमारी सुनयना को ज़रूर लाना। जब तक हम उससे माफ़ी नहीं माँग लेंगे, हमारे मन को शांति नहीं मिलेगी। हम सब उसके अपराधी हैं।'

'नहीं नानाजी... कोई अपराधी नहीं। कभी-कभी हालात ऐसे बन जाते हैं कि कुछ का कुछ हो जाता है। आप अपने मन पर बोझ मत रखिए। ईश्वर की कृपा से सब-कुछ ठीक है।'

अगली शाम वे तीनों ऋषिकेश अपने घर पहुँचे, तो काका ने नानी को अपने पीछे छिपाकर मालती से अकेली जाने को कहा, ताकि पहले वह माँ को इस अनायास मिलने की ख़ुशी के लिए तैयार कर सके।

भीतर के कमरे में जाते ही मालती ने माँ के गले में बाँहे डाल दीं, 'माँ... देखो मैं आ गई...।'

सुनयना मुस्कुराई, 'तेरे स्कूल का टूर पूरा हो गया? मसूरी कैसा लगा?'

'मैं मसूरी नहीं गई थी माँ।'

'तो?' उसने आश्चर्य से पूछा।

'बताओ कहाँ गई होऊँगी!'

'मुझे क्या मालूम?'

'अंदाज़ा लगाओ।'

'अरे मैं क्या लगाऊँ, तुम्हीं बताओ।' अब वह खीझी।

'अपने ननिहाल।'

'क्या?' वह भौंचक्की उसे देखने लगी।

'हाँ, माँ सच कह रही हूँ। मैं अपनी नानी को देखकर आ रही हूँ। ऐसा ही सुंदर मुखड़ा है उसका जैसा तेरा...। नानी, मामा, मामी, बच्चे सबसे मिलकर आ रही हूँ मैं।'

सुनयना गुमसुम-सी बैठी रही फिर अचानक पूछा, 'और तेरे नाना...?'

'वे नहीं रहे माँ...!' वह धीरे से बोली।

उसे दु:ख तो बहुत हुआ, पर आँखें नम न हो पाईं।

'नानी कैसी है तेरी...? जाने से पहले मुझे बताती...।'

'तुम भी चलतीं?'

'हाँ...चल सकती थी।'

'कोई बात नहीं। बाद में जा लेना। यों भी तुम जिससे मिलने को सबसे ज़्यादा बेताब हो, वह तो यहीं है।'

'यहीं है...मतलब!' वह नहीं समझी।

'दादाजी...नानी को लेकर आ जाइए।' उसने पुकारा।

काका उसकी नानी को लेकर आए। वह मंथर गति से चलती हुई भीतर आई और सुनयना तेज़ी से उसकी ओर बढ़ी। फिर क्या कहना था! बाईस वर्षों से बिछड़ी माँ-बेटी किस तरह मिलीं। एक-दूसरे को देखतीं, छूतीं, सहलातीं, गले लगतीं वे देर तक रोती रहीं।

दो महीने कैसे निकल गए। किसी को पता न लगा। इस बीच पिलानी से इंजीनियरिंग कर रहा नरेंद्र भी नानी से आकर मिल गया था। एक शाम जब सब एक साथ बैठे चाय पी रहे थे। उसने देवू से गाँव छोड़ आने का अनुरोध किया।

देवू ने इंकार कर दिया, 'अभी कैसे जाएँगी? अभी तो हमें आपके आने का पता ही नहीं लग रहा। मैं तो कहूँगा, जाना ही क्यों! अब तक वहाँ रहीं अब यहाँ रहिए।'

सबने उनसे रुकने की प्रार्थना की।

'मैंने तुम्हारा सुखी परिवार देख लिया है बेटा...। मैं फिर आऊँगी, पर अभी जाने दो। कुछ जवाबदारियाँ हैं।' नानी ने सफ़ाई दी। मालती ने हँसकर पूछा, 'अब क्या जवाबदेही है नानी...? तुम यहीं हमारे पास रहो न!'

'बाबा... वहाँ काम का समय शुरू होने वाला है। तेरे मामा-मामी खेत पर जाएँगे, तो बच्चों को कौन देखेगा?'

'क्या नानी तुम भी...!' वह नानी की गोद मे सिर रखकर लेट गई, 'रुक जातीं तो अच्छा था, पर एक हफ़्ते तक तो रुकना ही पड़ेगा।'

'क्यों?' उसने मालती के बालों में उँगलियाँ फिराते हुए पूछा।

'एक हफ़्ते बाद मेरी चार दिन की छुट्टी है फिर तुम्हारे और माँ के साथ मैं भी चलूँगी।'

'ठीक है।' वह मान गई।

मालती ने असली बात नहीं बताई कि इस एक हफ़्ते में जाने की तैयारी करनी है। अपनी सीमा के भीतर सबके लिए कोई-न-कोई सौग़ात ले जानी है।

इस एक हफ़्ते में मालती ने माँ के साथ मिलकर ख़ूब ख़रीदारी की। नानी के लिए नई अटैची, धोती, शॉल घर में सबके लिए कपड़े, चादरें, बिस्किट, नमकीन, मिठाई आदि। वह इस उत्साह से सारा सामान पैक कर रही थी जैसे अपने दहेज़ के कपड़े तैयार कर रही हो।

अंतत: नानी की विदाई का दिन आ पहुँचा। देवू और सुनयना उसके साथ जाने को तैयार हुए। चलते-चलते नानी ने काका को तहेदिल से धन्यवाद और मालती को आशीर्वाद दिया। नरेंद्र से अधिक समय तक न मिल पाने का उसे दु:ख था।

इस सफ़र में सुनयना का उल्लास देखते ही बनता था। जिस घर-आँगन को वह दूर से देखकर तरसती थी, उसे आज अपने निकट प्रत्यक्ष देखेगी। आँखें जुड़ा जाएँगी उसकी। अपने परिजनों के अतिरिक्त बचपन की सखियों, भाभियों समेत अनेक नए-पुराने चेहरों से मुलाक़ात होगी, इस कल्पना में उसे अपना दिल सँभाले नहीं सँभल रहा था।

गाँव पहुँचने पर उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। हर व्यक्ति सुनयना से रोते-रोते गले मिला। सबने उससे और देवू से हाथ जोड़कर क्षमा माँगी।

अपने आँगन में पहुँचकर सुनयना ने झुककर उसकी मिट्टी माथे पर लगाई। लोगों की भीड़ से भरा आँगन खिलखिला उठा। बरसों बाद एक बेटी को उसका खोया हुआ नैहर वापस जो मिला था।

91/28 **मोहिनी रोड,**
डालनवाला, देहरादून (उत्तराखंड)
मो॰ 09759649842

(एक सपना मेरा भी था कहानी संग्रह से)

कहानी

एक थी माया

विजय कुमार

मुझे बहुत ग़ुस्सा आ रहा था, मुझे कुछ समझ भी नहीं आ रहा था कि ऐसा क्या करूँ कि कहीं कोई समस्या न रहे, पर ग़रीबी अपने-आपमें बहुत बड़ी समस्या होती है, यह मुझे उस दिन ही पता चला। मुझे अपने आप पर, अपनी ग़रीबी पर उस दिन पहली बार ग़ुस्सा आया और बहुत ज़्यादा आया और मैं भीतर तक टूट गया। मेरी ज़िंदगी का पहला सपना ही बिखर रहा था।

:::1980:::

मैं सर झुकाकर उस वक़्त बिक्री का हिसाब लिख रहा था कि उसकी धीमी आवाज़ सुनाई दी, 'अभय, खाना खा लो', मैंने सर उठाकर उसकी तरफ़ देखा। मैंने उससे कहा, 'माया, मैं आज डिब्बा नहीं लाया हूँ।' दरअसल, सच तो यही था कि मेरे घर में उस दिन खाना नहीं बना था। ग़रीबी का वह ऐसा दौर था कि बस कुछ पूछो मत। जो मेरे पढ़ने का वक़्त था, उसमें मैं उस मेडिकल शॉप में सेल्समैन का काम करता था।

वह सामने खड़ी थी। मैंने उसे गहरी नज़र से देखा। वह एक साधारण-सी साड़ी पहने हुई थी, जिस पर नीले रंग के फूल बने हुए थे। पता नहीं उस साड़ी को कितनी बार धोया जा चुका था। उन नीले फूलों का रंग भी उतर सा गया था। उसने मुस्कराकर कहा, 'मेरे डिब्बे में थोड़ा सा खाना तुम्हारे लिए भी है। चलो खाना खा लो, लंच का समय है।' मैंने हँसकर कहा, 'अच्छा यह बताओ कि तुम्हारे डिब्बे में मेरे लिए कबसे खाना आने लगा?'

उसने कुछ नहीं कहा, बस मुस्कराकर अंदर के कमरे में चली गई। मैंने भी हिसाब-किताब बंद किया और उस कमरे में चल दिया, जहाँ उस मेडिकल शॉप के दूसरे कर्मचारी भी बैठकर दोपहर का खाना खा रहे रहे थे। उसने डिब्बा खोला। कुल मिलाकर उसमें चार रोटी, आलू प्याज़ की सब्ज़ी, और अचार का एक टुकड़ा था। उसने डिब्बे के कवर में मुझे तीन रोटी और कुछ सब्ज़ी दी, ख़ुद एक रोटी, सब्ज़ी और अचार के साथ खाने लगी।

मैंने कहा, 'यह क्या माया, एक रोटी से क्या होगा?' उसने कहा, 'मैं बहुत कम खाती हूँ, अभय।' मैंने ध्यान से उसे देखा। उसके चेहरे पर कोई आकर्षण नहीं था, पर वह अच्छी दिखती थी या हो सकता है कि उस दौर में या उस वक़्त में, यह सिर्फ़ उस उम्र का आकर्षण था, पर कुछ भी हो उसमें कुछ अच्छा लगता था मुझे। डिब्बे का खाना ख़त्म हो गया था और दूकान मालिक की आवाज़ आ रही थी, 'चलो सब काम पर लगो, ग्राहक आ रहे हैं।'

मेरा नाम अभय है और उस वक़्त, मेरी उम्र क़रीब बाईस साल थी। मैं कॉमर्स विषय में डिग्री की पढ़ाई कर रहा था, साथ में यह नौकरी भी। घर के हालात कुछ अच्छे नहीं थे, इसलिए नौकरी करना ज़रूरी था। सो सुबह कॉलेज जाता था और दोपहर में कॉलेज से सीधा इस दूकान में आ जाता था, जिसमें मैं सेल्समैन की नौकरी करता था। क़रीब रात के आठ बजे तक यहाँ नौकरी करता था और फिर नए सपनों की उम्मीद में मैं अपने घर चला जाता था। माया को हमारी दुकान में आए क़रीब एक महीना हो गया था। वह यहाँ पर अकाउंटेंट का काम करती थी। उसकी उम्र मुझसे ज़्यादा ही थी। रोज़ वह साइकिल से आती और चुपचाप अपना काम करती और चली जाती, कभी-भी किसी से कोई ज़्यादा बात नहीं करती थी, दूकान मालिक ने जो कहा, उसे सुन लिया। वह एक दुबली पतली-सी लड़की थी और उसके रख-रखाव से ाहिर था कि वह भी ग़रीब थी। वह भी का मतलब यह था कि मैं भी ग़रीब ही था। मैं स्लीपर पहनता था। सिर्फ़ दो पैंटें थीं और चार शर्ट। बस उसी से गुज़ारा चलता था। इस मेडिकल शॉप में मैं सेल्समैन था। मन में कल के लिए सपने थे, लेकिन राह नज़र नहीं आती थी। यूँ ही ज़िंदगी गुज़र रही थी। उन दिनों मुझ जैसे ग़रीब आदमी के सपने और ख़्वाइशें भी छोटी ही होती थीं।

धीरे-धीरे माया से मेरी दोस्ती हो गई। और बीतते हुए समय के साथ यह दोस्ती और गहरी होती चली गई।

उसको मुझमें कुछ अच्छा लगने लगा और मुझे उसमें कुछ। मुझे लगा कि यह प्यार ही था। उस वक़्त प्यार शब्द भी अच्छा लगता था और उसका अहसास भी। ख़ैर, ज़िंदगी कट रही थी। दोपहर से शाम तक काम और सिर्फ़ काम, दुनियादारी की दूसरी बातों के लिए समय नहीं मिलता था। कभी-कभी काम के इन्हीं मुश्किल और न ख़त्म होनेवाले पलों में हम एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्करा लिया करते थे। हाँ वह ज़्यादा मुस्कराती नहीं थी। पर मुझे अच्छी लगती थी।

हम अक्सर बातें कर लेते थे। उसने मुझे बताया कि वह अपने पिता और दो छोटे भाई-बहनों के साथ रहती थी। कॉमर्स में उसने ग्रेजुएशन किया था और पढ़ाई के तुरंत बाद ही नौकरी करने लगी थी, क्योंकि उसके पिता के पास कोई रोज़गार नहीं था और अब सारे परिवार की ज़िम्मेदारी उस पर ही थी। बस नौकरी और घर, इन दोनों के सिवा उसकी ज़िंदगी का कोई और मक़सद नहीं था। पर उसकी ज़िंदगी में शायद अब मैं भी था।

गुज़रते दिनों के साथ मैं उसके और क़रीब आने लगा था। मुझे वह अब और ज़्यादा अच्छी लगने लगी थी। उसकी मेहनत, उसका भोलापन, उसकी ज़िंदगी को जीने की जुस्तजू और अपने परिवार के लिए उसकी अपनी ख़ुशियों का गला घोंट देना मुझे बहुत अपना सा लगने लगा था। क्या यह प्यार था? आज सोचता हूँ तो उन अहसासों के कई नाम थे, पर मुझे लगता है कि उस वक़्त वह सिर्फ़ प्यार ही था।

दूकान के मालिक ने दीवाली की ख़ुशी में सबको उपहार दिए। मैंने धीरे से अपना उपहार भी उसके बैग में रख दिया। उसने यह देखकर मुझसे कहा, 'देखो ऐसा न करो, मेरी अपनी ख़ुद्दारी है, सिर्फ़ वह ही अब मेरे पास बची रह गई है, उसे तो न छीनो।' मैंने उससे कहा, 'ऐसी कोई बात नहीं है, बस इस उपहार का मैं क्या करूँगा? हाँ, अगर यह तुम्हारे काम आया तो मुझे अच्छा लगेगा। देखो, मना मत करो, इसे रख लो।' उसने बहुत मना किया, पर मैं भी नहीं माना और उसे अपना भी उपहार दे दिया। उपहार लेते समय उसकी आँखें भर आईं। उस दिन मुझे बहुत अच्छा लगा। सारे दिन आकाश में बादल छाए रहे। मन बावरा पक्षी बन उड़ता रहा।

समय बीतता रहा, मेरी तनख़्वाह बढ़ी। जब नई तनख़्वाह मिली तो मैंने माया से कहा कि उसे मैं पार्टी देना चाहता हूँ। वह हँस दी। उसने कहा कि उसने मेरे लिए एक शर्ट ख़रीदी है, क्योंकि मेरा जन्मदिन नज़दीक आ रहा था, तो दोनों बातों को एक साथ ही सेलिब्रेट करें। मैंने भी कहा, हाँ यह ठीक है।' और हँसकर अपनी-अपनी साइकिल से वापस घर की ओर चल दिए।

माया मेरे मोहल्ले से क़रीब आठ किलोमीटर दूर रहती थी। हमारे घरों को अलग-अलग करनेवाला एक मोड़ था। उस पर आकर हम रुकते थे और अपनी-अपनी राह पर चल पड़ते थे, दूसरे दिन फिर से मिलने के लिए। उस दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ। हम रुके, माया से मैंने कहा कि कल मिलते हैं और कल दोपहर का खाना कहीं बाहर खा लेंगे, तुम डिब्बा नहीं लाना। माया ने मुस्कराकर हाँ कहा। मुझे पता नहीं, पर क्यों उसकी भोली-सी मुस्कराहट बहुत अच्छी लगती थी।

दूसरे दिन माया नहीं आई। मैं पहली बार परेशान हुआ। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उन दिनों फ़ोन की सुविधा भी ज़्यादा नहीं थी, क्या हुआ, क्यों नहीं आई? जैसे तमाम सवाल मन में उमड़ने लगे। शाम को मैं जल्दी ही निकल पड़ा और अपनी साइकिल से उसके घर तक गया। उसने मुझे एक बार अपने घर का पता बताया था। घर पहुँचा, वह एक छोटा-सा घर था, शायद सिर्फ़ दो कमरों का।

मैंने दरवाज़े की साँकल खड़खड़ाई, दरवाज़ा ख़ुद माया ने ही खोला। मुझे देखकर चौंक-सी गई। मैंने पूछा, 'क्या हुआ, दूकान पर क्यों नहीं आईं?' उसका चेहरा उदास था। उसने कुछ नहीं कहा, बस अंदर आने का इशारा किया। घर के भीतर गया तो देखा कि एक चटाई है और उसपर उसके पिताजी और दोनों भाई-बहन बैठे हुए हैं, सभी उदास। उसके पिताजी मुझे जानते थे, वह एक-दो बार दूकान पर भी आए हुए थे, तब मुलाक़ात हुई थी। मैंने उन्हें नमस्ते की और बच्चों से उनकी पढ़ाई के बारे में पूछा।

फिर माया से पूछा कि वह दूकान पर क्यों नहीं आई तो पता चला कि कल जो तनख़्वाह माया को मिली थी, वह रास्ते में साइकिल से उसके बैग सहित गिर गई। जब तक वह उतरकर वापस जाती, वह बैग ही ग़ायब हो चुका था। उसने शाम को पूरे तीन चक्कर लगाए घर से ऑफ़िस और ऑफ़िस से घर, पर बैग को न मिलना था और वह न मिला। मेरी जेब में कल की मिली हुई तनख़्वाह का क़रीब आधा हिस्सा बचा था। वह मैंने निकालकर उसके हाथ में रख दिया। उसने आँखें भरकर मुझे देखा। मैंने कहा, 'कुछ न कहो, बस ले लो। मुझे अच्छा लगेगा।' उसके पिताजी ने मुझे देखकर हाथ जोड़ दिए। मैंने उनके हाथों को अपने हाथों में ले लिया और दोनों बच्चों के सर पर हाथ फेरकर बाहर निकल गया।

उस दिन मुझे फिर से बहुत अच्छा लगा। सारा दिन आकाश में बादल छाए रहे। मन बावरा पक्षी बन उड़ता रहा।

हम अक्सर यूँ ही मिलते रहे। ऑफ़िस में, राह में, बस यूँ ही। कभी कुछ भी कहा नहीं एक-दूसरे से, बस मिलते रहे। और एक-दूसरे को देखते रहे। कई बार बहुत कुछ कहने को हुआ, पर कह नहीं पाए। वह मुझे देखती और मैं उसे देखता। बस दिन यूँ ही गुज़र जाते। बीच में उसका एक जन्मदिन आया। मैंने उसे एक छोटा-सा लॉकेट दिया, जिसमें चाँदी से अँग्रेजी में 'A' बना हुआ था। उसने मुझे कहा कि वह यह लॉकेट हमेशा अपने पास रखेगी। ज़िंदगी के दिन बीतते गए। मुझे मेरे दोस्त दूसरे शहर में अक्सर बुलाते रहे, ताकि मैं एक बेहतर नौकरी कर सकूँ; लेकिन मैं कभी नहीं गया, एक तो मुझे दूसरे शहर में जाकर बसना, इस बात से ही डर लगता था और दूसरा मुझे माया से अलग नहीं रहना था।

उस दिन शिवरात्रि थी। वह शिव की पूजा करती थी। कुछ ज़्यादा ही पूजा करती थी। मैंने उससे पूछा, 'क्यों इतनी ज़्यादा पूजा करती हो शिव की!' उसने कहा, 'शिव भगवान की पूजा करने से अच्छा पति मिलता है। बिल्कुल तुम्हारे जैसा।' यह कहकर वह शरमा गई। मैं भी शरमा गया। उसने कहा, 'आज मैं डिब्बे में साबूदाने की खिचड़ी लाई हूँ। आओ, खाना-खा लो।' हमने लंच में साबूदाने की खिचड़ी खाई, फिर उसने कहा कि वह शिव मंदिर जा रही है। मुझे भी साथ आने को कहा। मैं भी चल पड़ा, मैं बहुत ज़्यादा भगवान को नहीं मानता था, 'पर ठीक है चलो। मंदिर चलो।'

शिव मंदिर में भीड़ थी। वह मंदिर शहर के एक पुराने तालाब के किनारे बना हुआ था। उसने पूजा की और हम दोनों तालाब के किनारे जाकर बैठ गए। शाम गहरी होती जा रही थी। कुछ देर में अँधेरा छा गया। अब कुछ इक्का-दुक्का लोग ही रह गए थे, वह मुझसे टिककर बैठी थी। हम चुपचाप थे। पता नहीं क्या हुआ, मैंने उसका हाथ पकड़ा। उसने कुछ नहीं कहा। मुझे कुछ होने लगा। फिर मैंने उसका चेहरा थामा अपने हाथों में और धीरे-से उसके होंठों को छुआ। वह ठंडे से थे। मैंने तुरंत उसका चेहरा देखा, वह मेरी ओर ही देख रही थी। मैंने कहा कि मुझे शायद उससे प्रेम हो गया है। उसने धीरे से कहा कि वह मुझसे प्रेम करती है। मैंने फिर उसका चेहरा छुआ। वह फिर से ठंडा ही लगा। मैंने सकपकाकर पूछा, 'माया तुम्हें कुछ नहीं होता?' उसने सर उठाकर पूछा, 'मतलब?' मैंने पूछा कि तुम कुछ रिएक्ट ही नहीं कर रही हो? 'तुम ऐसी क्यों हो?' उसने सर झुका लिया, उसकी आँखें गीली हो गईं। उसने धीरे से कहा, 'अभय, मैं ऐसी ही हो गई हूँ।' मेरा जीवन, मेरी ग़रीबी और मेरे घर के हालात, सबने मिलकर मुझे ऐसा बना दिया है। मेरे मन में किसी के लिए कोई भावना नहीं उमड़ती है।' मैंने कुछ नहीं कहा। बस चुप रह गया। बहुत देर तक हम दोनों में ख़ामोशी रही। फिर पुजारी ने आकर कहा कि मंदिर बंद हो रहा है, अब हम जाएँ। हम दोनों चुपचाप बाहर की ओर निकले और अपनी-अपनी साइकिल उठाई और चल दिए। मैंने उसे उसके घर तक छोड़ा, हम दोनों में से किसी ने कुछ नहीं कहा।

दूसरे दिन माया ने मुझसे कहा, 'आज तुमसे कुछ बातें करनी हैं।' मैंने कहा, 'हाँ कहो न।' उसने कहा, 'वहीं उसी मंदिर में चलो।' हम दोनों फिर उसी मंदिर में उसी जगह जाकर बैठ गए। उसने मेरा हाथ पकड़ा। शाम हो रही थी। सूरज डूब रहा था, तालाब के उस किनारे और हम दोनों बैठे थे इस किनारे।

उसने कहा, 'देखो अभय, आज मैं तुमसे जो कहने जा रही हूँ, सुनकर तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा, पर यही सच है और यही हम दोनों के लिए अच्छा होगा।' मैं चुप था। उसने कहा, 'मैं जानती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो और मैं भी तुमसे प्रेम करती हूँ।' यह कहकर उसने मेरा हाथ दबाया। मैं थोड़ा-सा आश्वस्त-सा हुआ। फिर उसने कहा, 'लेकिन हम शादी के लिए नहीं बने हैं।' मुझे एकदम से सदमा-सा लगा। माया ने कहा, 'देखो, तुम्हें अगर लगता है कि हम दोनों बहुत अच्छे पति-पत्नी साबित होंगे तो यह तुम्हारी ग़लतफ़हमी है। शादी के कुछ दिनों या महीनों के बाद तुम अपने प्रेम को खो दोगे और यहीं से तुम और मैं अलग-अलग होते चले जाएँगे।' मैंने एकदम से कहा, 'यह तुम क्या कह रही हो माया और कैसे कह सकती हो; यह सच नहीं है।' माया ने कहा, 'मैंने तुमसे ज़्यादा दुनिया देखी है, अभय। तुम बहुत अच्छे इंसान हो अभय और मैं नहीं चाहती कि तुम्हारे भीतर का यह इंसान जीते-जी ही मर जाए।' मैंने कहा, 'नहीं माया, ऐसा कुछ नहीं होगा। बस कुछ दिनों की ही बात और है, फिर एक नई नौकरी के साथ ही सब-कुछ ठीक हो जाएगा। हम शादी कर लेंगे।'

माया ने कहा, 'तुम समझ नहीं रहे हो, मैं अपने पिताजी और छोटे भाई-बहन को नहीं छोड़ सकती हूँ। मेरा जीवन उन्हीं के लिए है।' मैंने कुछ रुकते हुए कहा, 'मैं कुछ दिन इंतज़ार कर लूँगा।' माया ने मेरा चेहरा हाथ में लेकर कहा कि 'नहीं अभय, तुम इस इंतज़ार को नहीं सह

पाओगे और अगर हमने जल्दबाज़ी में शादी कर भी ली, तो सब-कुछ थोड़े ही दिनों में ख़त्म हो जाएगा। मैं तुम्हें और तुम्हारी अच्छाई को ख़त्म होते नहीं देख सकती।'

मेरी आँखें भीग गईं। माया ने कहा, 'देखो, हम दोनों हमेशा ही अच्छे दोस्त रहेंगे और प्रेम तो है ही, तुम्हें प्रेम में, मेरा यह शरीर भी चाहिए तो यह भी तुम्हारा ही है। लेकिन मैं तुम्हें कभी भी ख़त्म होते नहीं देख सकती हूँ और अगर हमने शादी की तो दुनिया की दुनियादारी तुम्हारे प्रेम को ख़त्म कर देगी, मैं यह जानती हूँ।'

मैंने एक अनजानी-सी आवाज़ में पूछा, 'तुम बहुत देर से मेरे प्रेम और मेरे ही बारे में बात कर रही हो, क्या तुम्हारा प्रेम कभी ख़त्म नहीं होगा?'

माया ने मुस्कराकर कहा, 'नहीं मेरे अभय, मेरा प्रेम तुम्हारे लिए कभी भी ख़त्म नहीं होगा। तुम देख लेना। मैं ख़ुद को भी जानती हूँ और तुम्हें भी।'

मैंने ग़ुस्से में कहा, 'तुमने यह बात कैसे कह दी कि मुझे तुम्हारा शरीर चाहिए?' माया ने कहा, 'मैं जानती हूँ कि तुम्हें नहीं चाहिए। पर अगर तुम्हारे भीतर मौजूद पुरुष को चाहिए तो यह भी तुम्हारा ही है। मैंने सिर्फ़ हम दोनों के बीच में मौजूद प्रेम की बात की है।'

मुझे बहुत ग़ुस्सा आ रहा था, मुझे कुछ समझ भी नहीं आ रहा था कि ऐसा क्या करूँ कि कहीं कोई समस्या न रहे, पर ग़रीबी अपने-आपमें बहुत बड़ी समस्या होती है, यह मुझे उस दिन ही पता चला। मुझे अपने आप पर, अपनी ग़रीबी पर उस दिन पहली बार ग़ुस्सा आया और बहुत ज़्यादा आया और मैं भीतर तक टूट गया। मेरी ज़िंदगी का पहला सपना ही बिखर रहा था।

मैं गुस्से में चिल्ला बैठा, 'मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, न तुम, न तुम्हारा प्रेम और न ही तुम्हारा शरीर।' और मैं उसे छोड़कर चल दिया, वह मुझे पुकारती ही रह गई। और मैं चला गया।

उस दिन मैंने पहली बार शराब पी, घर में चिल्लाता हुआ घुसा। माँ से कहा, 'अब मैं शहर चला जाऊँगा, यहाँ नहीं रहना है मुझे, दुनिया ख़राब है, यह ऐसा है, वह वैसा है', पता नहीं क्या-क्या बकते हुए मैं नींद के आगोश में चला गया।

दूसरे दिन मैं दूकान नहीं गया। मैंने बहुत सोचा, मुझे कोई समाधान नहीं मिला। ग़रीबी का कोई तुरंत समाधान नहीं होता, यह बात भी मुझे उसी वक़्त पता चली। मैं तीन दिन दूकान नहीं गया, माया भी नहीं मिलने आई। मैं तीसरे दिन दूकान पहुँचा तो पता चला कि माया ने नौकरी छोड़ दी है। इस बात से मुझे बड़ा धक्का लगा। मैं शाम को उसके घर पहुँचा। वह घर पर नहीं थी। मैं उसका इंतज़ार करता रहा। उसके पिताजी ने कहा कि उसे कोई दूसरी नौकरी मिल गई है। यह सुनकर मुझे बहुत बुरा लगा। थोड़ी ही देर में माया आ गई। मुझे देखकर उसने ख़ुशी से कहा, 'चलो अच्छा हुआ तुम आ गए, तुम्हें एक ख़बर सुनानी थी।' मैंने ग़ुस्से में कहा, 'मुझे मालूम है। मैं चलता हूँ।' माया ने कहा, 'अरे बाबा, रुको तो, तुम तो हमेशा ही ग़ुस्से में रहते हो। थोड़ा शांत भी हो जाओ, अच्छा बैठो।' फिर उसने मुझे चिवड़ा खिलाया और फिर मुझे साथ लेकर बाहर आ गई। उसने बड़े गंभीर स्वर में कहा, 'देखो अभय, अगर मैं वहाँ रहती तो न तुम काम कर पाते और न ही मैं। हम दोनों का जीवन ही ख़राब हो जाएगा। इसलिए मैंने दूसरी जगह नौकरी कर ली है। हम अब हफ़्ते में एक बार मिलेंगे। दोनों का मन ठीक रहेगा और हम दोनों की दोस्ती और प्रेम भी ज़िंदा रहेगा।' मैं बहुत देर तक उसे देखता रहा, कुछ नहीं कह पाया। मेरी आँखों में आँसू आ रहे थे। थोड़ी देर तक मैं उसका हाथ थामे बैठा रहा, कुछ देर बाद मैं चुपचाप चला आया!

मैं क़रीब एक हफ़्ते दूकान पर नहीं गया। बहुत सोचा, फिर लगा कि माया की सोच ठीक है। हमें अभी जीवन को और सुदृढ़, कल को और अधिक मजबूत बनाने की ओर ध्यान देना होगा। हो सकता है, कल कुछ अधिक बेहतर रास्ता निकल आए। सो पढ़ाई फिर शुरू हो गई, नौकरी भी चलने लगी, हफ़्ते में एक दिन माया से मिलता, बहुत सी बातें करता। और इस तरह समय को पंख लगाकर उड़ते हुए देखता रहा।

लेकिन, जल्दी ही लगने लगा कि कुछ नया नहीं होगा, जीवन बस ऐसे ही चलने वाला है। ग़रीबी के दिन पहाड़ जितने लंबे थे, कुछ सूझता नहीं था। कुछ दोस्त जो बाहर चले गए थे, वे बार-बार बुला रहे थे, माँ भी कह रही थी कि दूसरे शहर में जाकर एक नई नौकरी ढूँढूँ, जिससे कि घर की आमदनी बढ़े। बस मेरा मन ही नहीं मान रहा था, पता नहीं किस मृग-मरीचिका में मैं भटक रहा था, अब कभी-कभी शराब भी पीने लगा था। माया भी अब पता नहीं क्यों उदास रहने लगी थी। जब भी हम मिलते, वह बार-बार मेरा हाथ पकड़कर रो देती थी। मुझे यह सब बातें और पागल बना रही थीं।

वह मेरे कॉलेज का आख़िरी साल था। उम्मीद थी कि एक अच्छी नौकरी मिल जाएगी। रिजल्ट निकला, मैं पास हो गया था। अब कुछ नया करने का समय आ गया था।

उस दिन शिवरात्रि थी। मुझे मालूम था कि माया आज फिर मंदिर में जाएगी। उसने कल ही कहा था कि आज वह ऑफ़िस नहीं जाएगी। दोपहर के बाद वह मंदिर में आएगी। मैंने कहा, 'मैं भी उसे मंदिर में मिलूँगा।' दोपहर के बाद मैं उसी मंदिर में पहुँचा, जहाँ मैं उसे मिलता था। आज भीड़ थी, मैं मंदिर के कोने वाली एक जगह पर बैठ गया। धीरे-धीरे शाम हो रही थी। अचानक माया की आवाज़ आई, 'लो तुम यहाँ बैठे हो और मैं तुम्हें सारे मंदिर में ढूँढ़ रही हूँ।' मैंने उसकी ओर मुड़कर कहा, 'अरे बाबा, यही तो अपनी जगह है।' वह पास आकर बैठ गई। उसके साथ उसके दोनों भाई-बहन भी आए थे। उन्होंने मुझे नमस्ते की। मैंने भी उन्हें आशीर्वाद दिया। माया ने मुझे पूजा के लिए आने को कहा। मैंने मुस्कराकर कहा, 'तुम जानती हो, मैं भगवान को नहीं मानता। तुम जाओ और पूजा करके आ जाओ।' उसने कहा, 'देखना, एक दिन तुम, इसी मंदिर में इसी भगवान को हाथ जोड़ोगे।' मैं मुस्करा दिया। थोड़ी देर बाद वह आई और मेरे पास बैठ गई। उसने अपनी झोली में से एक डिब्बा निकाला, उसे मेरी ओर बढ़ाकर कहा, 'इसमें तुम्हारे लिए लड्डू और चिवड़ा है।' मैंने हँसकर कहा, 'अरे तुम कब तक मेरे लिए डिब्बा लाती रहोगी?'

माया ने कहा, 'जब तक मैं ज़िंदा हूँ, तब तक तुम्हारे लिए हर शिवरात्रि को मैं यह डिब्बा लाऊँगी यह वादा रहा।' मेरी आँखें भीग गईं। मैंने कुछ नहीं कहा और डिब्बे में रखा खाना बच्चों के साथ बाँटकर खाने लगा।

माया ने धीरे से मेरा हाथ पकड़कर कहा, 'अभय, एक ख़बर है, तुम्हें बतानी है।' मैंने कहा, 'बताओ।'

माया ने बच्चों को वहाँ से हटाने की गरज से उन्हें खेलने भेज दिया और मेरा हाथ पकड़ा, बहुत कसकर पकड़ा, मानो उसे छूट जाने का डर हो। फिर उसने मेरी ओर बहुत प्यार से, बहुत गहरी नज़र से देखते हुए कहा, 'अभय, मेरी शादी तय हो गई आज।'

मैं अवाक् रह गया जैसे मुझ पर बिजली आ गिरी हो। मैं अजीब-सी आँखों से माया को देखने लगा। माया ने कहा, 'देखो, हमने सोचा था कि हम एक-दूसरे से शादी नहीं करेंगे, ताकि हमारा प्रेम बचा रहे। और मुझे यह शादी करनी पड़ी। मैं शादी नहीं करनी चाहती थी, कभी-भी नहीं और किसी से भी नहीं, यह बात तुम जानते हो। लेकिन मुझे परिवार के लिए यह शादी करनी पड़ेगी।' मैं चुपचाप था। बहुत अजीब-सा अहसास हो रहा था। दिमाग़ और दिल दोनों हवा में तैर से रहे थे। जो हमने तय किया था, यह ठीक भी था कि हम दोनों एक-दूसरे से शादी नहीं करेंगे ताकि हमारा प्रेम बचा रहे हमेशा ही, लेकिन माया की शादी किसी और से, यह मैं सहन नहीं कर पा रहा था। मैंने माया से ग़ुस्से में पूछा, 'यह क्या बात हुई, जब शादी ही करनी थी तो मुझसे कर लेतीं, मैं तो तैयार ही था?' माया ने शांत स्वर में कहा, 'अभय, तुम समझ नहीं रहे हो, हम दोनों की सामाजिक परिस्थिति अलग-अलग है। मैं तो ख़ुश हो जाती तुमसे शादी करके, लेकिन तुम कभी भी ख़ुश नहीं हो पाते।'

मैं भड़ककर बोला 'और तुम अब जो शादी कर रही हो, उससे तुम ख़ुश हो?' माया ने बहुत शांत स्वर में मेरा हाथ पकड़कर कहा, 'अभय, मेरे लिए तुमसे बेहतर कोई और पुरुष नहीं। भगवान शिव की कसम। मैं यह शादी अपनी ख़ुशी के लिए नहीं कर रही हूँ, मैं यह शादी सिर्फ़ अपने परिवार के लिए कर रही हूँ, जिनकी ज़िम्मेदारी मुझ पर ही है। तुम मेरे साथ कभी भी ख़ुश नहीं रह सकते थे। थोड़ी देर की ख़ुशी रहती और फिर ज़िंदगी-भर का चिड़चिड़ापन! तुम्हारे लिए हमारा प्रेम सिर्फ़ बोझ बनकर रह जाता। और हर बीतते हुए वक़्त के साथ तुम ख़त्म होते जाते। और मैं यह नहीं चाहती थी। मैं चाहती हूँ कि तुम ज़िंदा रहो, न कि सिर्फ़ शरीर में बल्कि, ज़िंदगी के विचारों में, तुम बहुत अच्छे इंसान हो। इस दुनिया को, और बहुत सी माया और दूसरे इंसानों को तुम्हारी ज़रूरत है। मैं तुम्हें जीते हुए देखना चाहती हूँ।'

पता नहीं माया कि बातों में क्या था, मैं शांत होता गया। मैंने धीरे-से कहा, 'पर माया, हमारा प्यार उसका क्या?' माया ने कहा, 'प्यार कभी नहीं मरता अभय। वह तो हमेशा ही ज़िंदा रहेगा। और हमारा प्यार तो कभी भी ख़त्म नहीं होगा।'

मैंने धीरे से पूछा, 'अपने होने वाले पति के बारे में तो बताओ?' माया ने कहा, 'तुम्हें उनके बारे में जानकार बहुत अच्छा नहीं लगेगा, लेकिन जैसा कि मैंने कहा है यह शादी मैं सिर्फ़ अपने परिवार के लिए कर रही हूँ, तुम वादा करो कि तुम मुझे रोकोगे नहीं।' मैंने उसे शक से देखते हुए कहा, 'क्या बात है माया, अगर तुम ख़ुश न हो तो, क्यों कर रही हो यह शादी?' माया ने कहा, 'मैंने बहुत पहले ही तुमसे कहा था अभय कि मैं अब मेरी ख़ुशी के लिए नहीं जीती हूँ। मेरे लिए मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी ख़ुशी सिर्फ़ और सिर्फ़ तुम ही हो। तुम ही मेरे शिव का सबसे बड़ा प्रसाद हो। लेकिन मेरी क़िस्मत में तुम होकर भी नहीं हो।' फिर माया चुप हो गई। इतने में बच्चे आ गए। वह घर चलने की ज़िद करने लगे। माया धीरे से उठी, उठते समय मेरे हाथ से

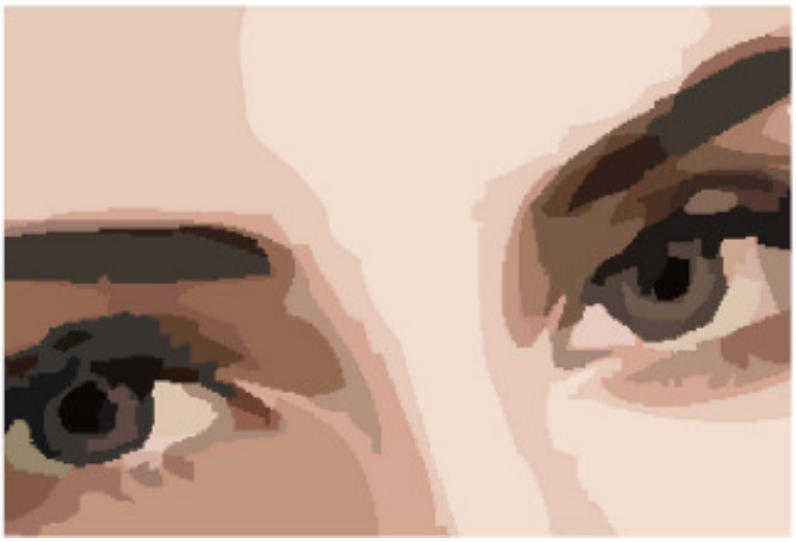

उसका हाथ नहीं छूट रहा था।

मैं उसके साथ बाहर तक आया। मंदिर के बाहर आकर उसने मेरी तरफ़ देखा। उसकी आँखों में आँसू थे। उसने कहा, 'अभय, तुम मेरी शादी में मत आना। तुम सह नहीं पाओगे।' पता नहीं मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उसने मेरी तरफ़ देखा। मेरे होंठों को माया ने अपने दाएँ हाथ से छुआ और उस हाथ को अपने माथे पर, अपने सर पर, अपने दिल पर और अंत में अपने होंठों पर लगा दिया। उसने कहा, 'अभय, हमेशा ही ऐसे अच्छे इंसान बनकर रहना। सोचना कि कोई माया थी जिसने तुम्हें यह कहा था। मेरी आँखें फिर भीग गईं। मैंने कहा, 'माया, मैं तुम्हें कभी-भी भुला नहीं पाऊँगा।'

उसने एक रिक्शावाले को हाथ दिखाया। रिक्शा पास आकर रुका। रिक्शे में उसने बच्चों को बिठाया और मुझे देखा। जी भरकर देखा। उसका दिल उसकी आँखों में साफ़ नज़र आ रहा था। फिर उसने धीरे से कहा, 'मेरे होने वाले पति विधुर हैं। उन्होंने वादा किया है कि वह मेरे पूरे परिवार की देखभाल करेंगे, जब तक सभी हैं, उन सभी का ख़्याल रखेंगे। दोनों भाई-बहनों को पढ़ाएँगे, उनका जीवन बनाएँगे, कभी-भी कोई कमी नहीं होने देंगे। सबने पिताजी से और मुझसे कहा कि यह रिश्ता स्वयं भगवान ने भेजा है। वरना कौन आजकल किसी के परिवार को पालने की बात करता है? मैं भी मान गई अभय, क्या करूँ। मेरा जीवन अभिशप्त-सा जो है। पर मेरे लिए यह भी भगवान का ही प्रसाद है। मैं चलती हूँ, कल से ऑफ़िस नहीं जाऊँगी, अगले हफ़्ते शादी है। तुम शादी में न आना।' कहकर वह रोने लगी।

मैं पत्थर का बन गया था, उसके कहे हुए शब्द पारे की तरह मेरे कानों में बरस रहे थे। मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे। वह रिक्शे में बैठने के लिए मुड़ी, फिर पता नहीं क्या हुआ, मुझसे लिपट गई, झुककर मेरे पैर छुए, पैरों की मिट्टी अपने सर पर लगाई और अपनी रुलाई को दबाते हुए रिक्शे में बैठ गई और फिर चली गई। मुझे लगा कि मेरा जीवन ही जा रहा है। मैं पागल-सा हो रहा था। बहुत देर तक मैं वहीं खड़ा उसको रिक्शे में जाते हुए देखता रहा।

कुछ देर में मंदिर की घंटियाँ बजने लगीं, यह मंदिर के बंद होने का संकेत थी। मैं भीतर गया और भगवान को जी भरकर कोसा। मैंने कहा, 'इसीलिए मैं तेरी पूजा नहीं करता हूँ। तू है ही नहीं, तू इस दुनिया में अगर होता तो क्या यह होने देता?'

इसी तरह का अनर्गल प्रलाप करते हुए और पता नहीं क्या-क्या बोलते हुए मैं मंदिर में चिल्लाने लगा। पुजारी ने मुझे मंदिर के बाहर निकाल दिया। मैं रोते-कलपते हुए घर आ गया। माँ से कहा, 'मैं यह शहर छोड़कर जा रहा हूँ, दूसरी नौकरी ढूँढ़ता हूँ और फिर तुझे भी ले जाता हूँ। मैंने उसी रात वह शहर छोड़ दिया।

:::: 1992 ::::

बहुत बरस बीत गए। मैं अपने शहर को छोड़कर दूसरे शहर में नौकरी करने आ गया और वहीं बस भी गया। बीतते समय के साथ मेरा भी एक छोटा- सा परिवार बन गया। फिर भी कभी-कभी मुझे, माया की बहुत याद आ जाती, वह कैसी होगी? उसका जीवन कैसा होगा? लेकिन मुझे यह तृप्ति थी मन में कि जब मैं उससे अलग हुआ तो वह ज़िंदगी में बस गई थी, उसका परिवार बस गया था। मैं अक्सर सोचता था कि क्या वह मेरे लिए एक बेहतर जीवनसंगिनी साबित होती? और भी कुछ इसी तरह की अनेक बातें, जिनका अब कोई मतलब नहीं था।

फिर अचानक किसी काम के सिलसिले में मुझे अपने शहर जाना पड़ा। वहाँ पहुँचकर मेरे मन में सबसे पहली याद सिर्फ़ और सिर्फ़ माया की ही आई थी।

संयोगवश उस दिन शिवरात्रि भी थी। जिस काम के सिलसिले में मुझे जाना पड़ा था, उसे पूरा करते-करते मुझे शाम हो गई थी, रात की गाड़ी थी वापसी के लिए और मैं एक बार माया से ज़रूर मिलना चाह रहा था। मेरे क़दम ख़ुद-ब-ख़ुद उसके घर की तरफ़ मुड़ गए, अब वहाँ पर काफ़ी कुछ बदल चुका था। उसके घर की जगह अब वहाँ कोई और बिल्डिंग सी बनी हुई थी। मैंने वहाँ पर पूछा तो पता चला कि माया के पिताजी गुज़र चुके हैं, उनके गुज़रने के बाद माया और उसका पति, माया के दोनों भाई-बहनों के साथ कहीं और रहने चले गए हैं। कहाँ गए किसी को मालुम नहीं था। मैं निराश होकर वापस लौट आया, रास्ते में मुझे तालाब के किनारेवाला वही मंदिर दिखाई दिया, आँखों में बहुत-सी बातें तैर गईं। मेरे पास कुछ समय था, सो मैंने सोचा कि उसी मंदिर में बैठकर समय बिता लिया जाए।

मैं मंदिर में गया और उसी कोने पर जाकर बैठ गया, जहाँ कभी माया के साथ बैठा करता था। कुछ भीड़ थी, पर मैं वहीं जगह बनाकर बैठ गया और माया के साथ इस जगह बिताए हुए लम्हों को याद करने लगा। थोड़ी देर बाद मंदिर लगभग ख़ाली-सा हो गया। मेरे दिमाग़ में बस यही चलता रहा कि माया कैसी होगी? कहाँ होगी? कि तभी एक आवाज़ आई–'मुझे मालूम था, तुम एक दिन यहीं मिलोगे।' मैं चौंककर पलटा और देखा तो माया खड़ी थी। मैं बहुत चकित हुआ और प्रभु की लीला पर ख़ुश भी (शायद पहली बार प्रभु की महत्ता को स्वीकारा था)।

मैंने माया को गौर से देखा। वह और भी उम्रदराज लग रही थी। उसके साथ उसके छोटे भाई और बहन भी थे, जो कि अब काफ़ी बड़े हो गए थे, साथ में एक छोटा-सा लड़का भी था। मैंने मुस्कराकर कहा, 'आओ बैठो, तुम्हारी ही जगह है, तुम्हारा ही इंतज़ार कर रही है।' वह पास आकर बैठ गई। मैंने उसकी तरफ़ हाथ बढ़ाया, उसने मेरा हाथ थामा और मेरी तरफ़ देखने लगी। मैंने कहा, 'कैसी हो माया।' उसने कहा, 'मैं ठीक हूँ और तुम?'

'मैं भी ठीक हूँ।' मैंने कहा। मैंने फिर उसके भाई-बहन की तरफ़ इशारा करके पूछा, 'यह दोनों ठीक हैं?' उसने कहा, 'हाँ अब तो अच्छी स्कूल में पढ़ते हैं।' मैं चुप हो गया। फिर उसने उस छोटे लड़के की ओर इशारा करके कहा 'यह मेरा बेटा है।' मेरे मन में एक कसक-सी उठी, फिर भी मैंने उसके बेटे की तरफ़ मुस्कराकर हाथ हिलाया।

उसने पूछा, 'तुम कैसे हो। शादी कर ली?' मैंने कहा 'हाँ, कर तो ली, पर सच कहूँ तो कभी-कभी तुम्हारी बहुत याद आती है। और आज यहाँ इस शहर में आना हुआ तो तुम्हारे घर गया, तुम नहीं मिलीं तो इस मंदिर में आ गया। और देखो तुम मिल भी गईं। यह तो बस भगवान का करिश्मा ही है।'

माया ने कहा, 'अच्छा तो अब तुम भगवान् को भी मानने लग गए हो?' मैंने कहा, 'ऐसी कोई बात नहीं है बस ऐसे ही कह दिया, लेकिन तुमको यहाँ देखकर बहुत ख़ुशी हुई, सच मैं सबसे पहले तुम्हारे घर गया था, लेकिन वहाँ तुम नही थी। वैसे आजकल रहती कहाँ हो?'

माया ने मुस्कराकर कहा, 'सब बताती हूँ, बाबा, पहले भगवान के दर्शन तो कर लूँ, नहीं तो मंदिर बंद हो जाएगा।' मैंने कहा, 'ज़रूर, पहले दर्शन कर आओ।

मैंने उसे देखा। वह बच्चों के साथ भीतर की ओर चली गई और मैं तालाब के पानी को देखता रहा और माया के बारे में सोचता रहा।

बस इसी सोच में था कि उसकी आवाज़ आई, 'लो प्रसाद खा लो।' और यह कहते हुए उसने बैठते हुए अपने झोले से एक डिब्बा निकाला, 'कुछ लड्डू और चिवड़ा है। तुम्हें पसंद था न? यह लो, खा लो।' मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा, 'तुम्हें पता था कि मैं आज मिलूँगा?' उसने कहा, 'मैं हर शिवरात्रि को तुम्हारे लिए लड्डू और चिवड़े का डिब्बा लेकर यहाँ ज़रूर आती हूँ, यही सोचकर कि कभी तो तुम मिलोगे। और देख लो आज तुम मिल भी गए।'

मेरे गले में कुछ अटकने लगा। मेरी आँखें भी भर आईं। माया ने मेरे आँसू पोंछते हुए कहा, 'अरे पागल, अब भी रोते हो?' मैंने थोड़ी देर बाद पूछा, 'तुम अपने बारे में बताओ, कैसी हो? कहाँ हो?' माया ने बच्चे को प्रसाद खिलाते हुए कहा, 'शादी के कुछ दिन बाद ही बाबूजी नहीं रहे। मैं अपने भाई और बहन को लेकर अपनी ससुराल चली आई। कुछ दिनों बाद, मेरा बेटा हुआ। और फिर दो साल पहले ही वह गुज़र गए, उन्हें दिल की बीमारी थी, जो कि बाद में पता चली।' मेरी आँखों से फिर आँसू बहने लगे, 'हे भगवान इसे और कितने दुःख देगा?' माया कह रही थी, 'पर उन्होंने कुछ पैसा मेरे लिए रख छोड़ा था, मैंने उसी पैसे से एक किराने की दूकान खोल ली है और लोगों को डिब्बा पार्सल भी बनाकर देती हूँ। कुल मिलाकर, अब ज़िंदगी की गाड़ी ठीक चल रही है। घर भी है, दूकान भी है, डिब्बे का काम भी अच्छा चल रहा है, दोनों भाई बहन भी अच्छे से पढ़ रहे हैं। शिव भगवान की कृपा है।' फिर वह चुप हो गई। मैं भी चुप

था, पता नहीं क्या सोच रहा था, मन में विचारों का अजीब-सा झंझावात चल रहा था।

हम बहुत देर तक चुप रहे। रात गहरी हो गई थी। पुजारी ने आकर कहा कि मंदिर बंद होनेवाला है। माया ने कहा, 'अच्छा अब चलती हूँ, अगली शिवरात्रि को मिलना।' मैं भी उठ खड़ा हुआ। मैंने यूँ ही पूछा, 'माया मेरी याद नहीं आती क्या?' माया ने मुस्कुराकर मेरा हाथ पकड़ा और कहा कि, 'ऐसा कोई दिन नहीं जब मैं तुम्हें याद नहीं करती हूँ, पर तुम नहीं होकर भी मेरे पास ही रहते हो।'

मैंने उसकी ओर गहरी नज़र से देखा, उसने कहा, 'मैंने अपने बेटे का नाम अभय ही रखा है। इसलिए, हमेशा, घर में अभय के नाम की गूँज उठती रहती है।'

मैं अवाक् रह गया। वह कहने लगी, 'बेटा अभय, इनके पैर छुओ।' और जब वह छोटा अभय झुका तो उसके गले में से बाहर की ओर एक लॉकेट लटक गया। मैंने उसे पहचान लिया। वह मेरा माया को दिया हुआ लॉकेट था, जिसमें, 'A' लिखा हुआ था; मेरी आँखें आँसुओं से भर गईं, धुँधला गईं और उसी धुंध में माया एक बार फिर चली गई।

मेरी आँखों में आँसू थे। पुजारी फिर मेरे पास आया। वही पुराना पुजारी था, जिसने हमारे प्रेम की शुरुआत और अलग होना देखा था; उसने मुझे और मैंने उसे पहचान लिया था। उसने मेरे कंधे पर हाथ रखा। मैं अकेला ही था, मैंने मंदिर को देखा और फिर धीरे-धीरे मेरे क़दम भगवान शिव की मूर्ति की ओर बढ़े। और मैंने पहली बार भगवान को हाथ जोड़े। मेरी आँखों में आँसू थे और मैं भगवान को पूज रहा था और कह रहा था कि वह जो भी करता है, अच्छा ही करता है। और हाँ भगवान है।।

मैं भागते हुए मंदिर के बाहर आया और दूर अँधेरे में माया को खोजने की नाकाम कोशिश की; पर वक़्त और माया दोनों ही रेत की तरह हाथ से निकल गए थे!

मैं वापस चल पड़ा।

आज भी ज़िंदगी में जब उदास और अकेला-सा महसूस करता हूँ तो बस यही सोचता हूँ कि माया है कहीं और मैं एक आह भरकर अपने-आपसे कहता हूँ—एक थी माया!

Flat No. 402 Fifth Floor, Pramila Residency,
H.No. 36-110/402 Defence Colony,
Sainikpuri Post, Secunderabad 500094 (A.P.)

मोबाइल : 09849746500

('एक थी माया' कहानी-संग्रह से)

'हिंदी साहित्य निकेतन शोध पुरस्कार'

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

हिंदी साहित्य निकेतन देश का ऐसा विशिष्ट संस्थान है, जो हिंदी-शोध की दिशा में विशेष रूप से सक्रिय है। इस संस्थान ने अभी तक हिंदी में संपन्न शोध की पूरी सूचनाएँ लगभग 3000 पृष्ठों के पाँच खंडों में प्रकाशित की हैं।

हिंदी साहित्य निकेतन की ओर से उसकी स्वर्णजयंती के अवसर पर प्रकाशित शोध-प्रबंधों पर 'हिंदी साहित्य निकेतन शोध पुरस्कार' देने की घोषणा की गई है।

नियम एवं शर्तें-

1. इस वर्ष पुरस्कार की राशि 25000 रुपए होगी।
2. पुरस्कार हेतु पिछले तीन वर्षों में (2010 तथा बाद के) प्रकाशित शोध-प्रबंध स्वीकार्य होंगे।
3. शोध-प्रबंधों की तीन प्रतियाँ (निर्मूल्य) पंजीकृत डाक से भेजनी होंगी।
4. पुरस्कार का निर्णय विद्वानों की एक समिति द्वारा किया जाएगा।
5. प्रविष्टि भेजते समय किसी भी पुस्तक पर अपना विवरण न लिखें, न ही हस्ताक्षर करें।
6. प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि 30 जून 2014 है।
7. निर्णायक मंडल द्वारा किया गया निर्णय अंतिम तथा सभी को स्वीकार्य होगा।
8. पुरस्कार-हेतु भेजे जाने वाले शोध-प्रबंधों के पैकिट पर सबसे ऊपर 'शोध-पुरस्कार हेतु' अवश्य लिखा जाए।
9. समस्त प्रविष्टियाँ निम्न पते पर प्रेषित की जाएँ–

हिंदी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) 246701

बाल कहानी

लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'

गधों ने दुलत्ती चलाना कैसे सीखा

पिछली तरफ अगर कोई खरोंच आई भी तो कोई बात नहीं। आँखें, नाक, मुँह तो बच जाएँगे और अगर हम पिछली लातें जोरदार ढंग से चलाकर दुश्मन पर हमला बोल दें...

खर गोधू और उसका दोस्त खर गोपू दोनों मस्ती में खूब खेलते थे तथा झूठ-मूठ की लड़ाई के दाँव-पेंच एक-दूसरे को दिखाते और लड़ाई के नए-नए तरीके सीखने की कोशिश करते।

कुछ दिनों बाद गोधू बोला 'यार गोपू, अब तो हम दोनों लड़ाई में काफी माहिर हो गए हैं और दोनों मिलकर किसी भी जानवर को हरा सकते हैं।'

'क्यों नहीं' गोधू बोला।

उन दिनों गधे पीछे की टाँगे चलाने वाली दुलत्ती नहीं मारते थे। बस आगे के दाँतों-टाँगों से ही कुछ लड़ाई कर लेते थे। तभी उनको एक भालू दिखाई दिया। दोनों ने आँखों-आँखों में कुछ इशारा किया और चल पड़े भालू से लड़ने।

भालू तो आप जानते ही हैं कि कितना खूँखार होता है, जैसे ही गोधू उससे लड़ने के लिए आगे बढ़ा कि भालू ने अपनी बलशाली पंजों के नाखूनों से उसका मुँह नोच लिया, उसके चेहरे पर जगह-जगह गहरी खरोचें आ गईं, तभी गोपू ने पीछे से उसकी पूँछ दाँतों से पकड़नी चाही पर, भालू अपनी पूँछ बचाकर तेजी से मुड़कर उसकी तरफ झपटा और उसके मुँह को, कानों को, नाक को नाखूनों से लहू-लुहान कर दिया अभी दाँत तो उसने चलाए ही नहीं थे।

दोनों की एक न चली और दोनों खिसिया कर वापस आ गए। दोनों एक-दूसरे की सूरत देखकर दर्द के होने पर भी मुस्कुराने की कोशिश करते हुए तालाब पर पहुँचे। तालाब के पानी में उन्होंने अपने खरोंचों से भरे हुए चेहरे देखे, जगह-जगह खून रिसता हुआ देखा तो दोनों गुस्से से भर उठे। दोनों ने सलाह की 'ऐसे तो हम भालू से नहीं लड़ सकते पर उससे बदला जरूर लेना होगा।'

'हाँ-हाँ इतनी बेइज्जती तो हम कभी नहीं सह सकते।' गोपू बोला, 'ठीक है पर हमारे और जानवरों की तरह सींग भी नहीं हैं कि उनसे ही भालू को घायल कर सकें। अगले पैर उठाने तक तो वह हमारे ऊपर हमला कर देता है। दाँत आगे बढ़ाओ तो हमारा मुँह अपने नाखून से लहू-लुहान कर देता है, सोचो, हम उससे कैसे मुकाबला कर सकते हैं।'

गोधू बोला, ''अच्छा अगर हम मुँह की तरफ से लड़ने के बजाए पिछले पैरों से लड़ें तो कैसा रहेगा।''

कुछ देर सोचकर गोपू बोला, 'हाँ भाई कह तो तुम ठीक रहे हो, पिछली तरफ अगर कोई खरोंच आई भी तो कोई बात नहीं आँखें, नाक, मुँह तो बच जाएँगे और अगर हम पिछली लातें जोरदार ढंग से चलाकर दुश्मन पर हमला बोल दें तो वह सोच भी नहीं पाएगा कि वैसे पिछली तरफ से भी हमला हो सकता है। ऐसे अचानक हमला करके हम उसको हरा सकते हैं।'

'सही बात है पर हमें पिछली टाँगें चलानी तो आती ही नहीं।'

'कोशिश करते हैं, चल उस पेड़ पर पिछली लातें लगाने का अभ्यास करते हैं।'

'ठीक है।'

दोनों पेड़ के पास पहुँच गए। दोनों ने बारी-बारी से पिछली लातें पेड़ पर चलाने की कोशिश की, पहले तो दो-चार बार इस कोशिश से खुद ही लुढ़क गए, पर कुछ और बार ऐसा अभ्यास करने पर कुछ लातें पेड़ पर लग ही गईं। उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और देर तक उस

पेड़ पर दुलत्ती लगाने का अभ्यास बारी-बारी करते रहे। यहाँ तक कि पेड़ की खाल छिलने लगी। यह देखकर दोनों का उत्साह दुगना हो गया।

अगले दिन उन्होंने दूसरे पेड़ पर दुलत्ती चलाने का अभ्यास जारी रखा। अब तो दोनों की ठीक-ठाक दुलत्ती चलने लगी, पर उनकी दुलत्ती में अभी उतनी ताकत नहीं आ पाई थी।

फिर तो उन्होंने रोज ही ऐसा अभ्यास जारी रखा। इस तरह कुछ सप्ताह बाद पिछली लातों से दोनों ऐसी दुलत्ती चलाने लगे कि एक बार में ही पेड़ की खाल छिल जाती। तब दोनों ने आपस में एक-दूसरे पर दुलत्ती चलाने तथा बचने का अभ्यास शुरू किया। दोनों एक-दूसरे पर दुलत्ती चलाते अगले को या तो बचना होता या पलट-वार करना होता। दोनों को कभी-कभी एक-दूसरे की तगड़ी दुलत्ती भी पिछड़ी पर लगती रहती पर दोनों मुस्कुरा कर दर्द को सह लेते। इस तरह उनका पिछला भाग भी काफी मजबूत हो गया।

फिर तो दोनों पर ऐसी मस्ती छाई कि कोई भी गधा, घोड़ा या जिब्रा आदि पास से निकलता तो अचानक उस पर पीछे से तगड़ी दुलत्ती चला देते। अगला जानवर वैसी तगड़ी और अचानक दुलत्ती से दर्द के मारे कराहने लगता। यह देखकर दोनों हँसते हुए आगे बढ़ जाते। लेकिन बाकी जानवर भी कब तक उनका वैसा उपद्रव सहन करते। उनकी भी देखा-देखी और गधों, घोड़ों, जिब्रों आदि ने भी दुलत्ती का अभ्यास करना शुरू किया और कुछ दिनों में उन्होंने भी तगड़ी दुलत्ती चलाना सीख लिया।

इसके बाद गोधू-गोपू को भी अपनी दुलत्ती का तगड़ा जवाब मिलने लगा। तब इन दोनों ने भी बिना बात किसी पर दुलत्ती चलाना छोड़ दिया। लेकिन वे दोनों तब तक भालू से बदला लेने की बात भूल चुके थे। तभी से गधे, घोड़े, जिब्रे आदि दुलत्ती चलाते आए हैं।

ए 20/4, **फेज प्रथम, डी०एल०एफ० सिटी**
गुड़गाँव 122002, **(हरियाणा)**
मो० 09719097992, 09312031565

(गधा बत्तीसी से)

प्रपत्र 4 (नियम 8)

1. प्रकाशन का स्थान	:	बिजनौर
2. प्रकाशन की आवर्तिता	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	:	डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स ज्योतिष भवन बिजनौर 246701
4. प्रकाशक का नाम	:	डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	16 साहित्य विहार बिजनौर (उ.प्र.)
5. संपादक का नाम	:	डा. गिरिराजशरण अग्रवाल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	16 साहित्य विहार बिजनौर (उ.प्र.)
6. उन व्यक्तियों के नाम पते जो इस अखबार के मालिक या साझेदार हैं या इसकी सारी पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हैं।	:	हिंदी साहित्य निकेतन 16 साहित्य विहार बिजनौर (उ.प्र.)

मैं डा. गिरिराजशरण अग्रवाल यह घोषित करता हूँ कि उपयुक्त विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

ह० डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
प्रकाशक

व्यंग्य

दारोगा रुस्तम अली

दरोगा रुस्तम अली अपनी तलवार मार्का मूँछों के बीच धीमे से हँसकर बोला, 'बात यह है एम॰पी॰ साहब, यह साला बहुत शातिर क़िस्म का बदमाश है। पिछले दिनों रजवाहे के निकट जो बस लुटी थी, उसका मुख्य अभियुक्त यही था। पर साला न तो माल ही बरामद करा रहा है और न अपने सहयोगियों का नाम-पता बताने को तैयार है।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

दरोगा रुस्तम अली अपने समय का अत्यंत काइयाँ, बल्कि आदमख़ोर क़िस्म का पुलिस अधिकारी रहा था। जहाँ भी रहा, उस क्षेत्र के अपराधी उसके नाम से यों काँपते रहे, जैसे आँधी में वृक्ष के पत्ते काँपने लगते हैं। पुलिस की भाषा में थर्ड डिग्री किस बला का नाम है और उसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है, शायद ही रुस्तम अली से अधिक कोई इस रहस्य को जानता हो। जब तक स्कूल में रहा, रुस्तम अली थर्ड डिग्री से ऊपर कभी नहीं गया और जबसे पुलिस की नौकरी में आया, अपनी परंपरा के अंतर्गत थर्ड डिग्री का ही प्रयोग करता रहा, लेकिन एक दिन सुनने में आया कि दरोगा रुस्तम अली का हृदय- परिवर्तन हो गया है। यों तो अब हमें किसी छोटे या बड़े परिवर्तन से आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि हमारे देश में पिछले कई दशकों से निरंतर परिवर्तन व धर्म-परिवर्तन आदि के बाद अब राजनीतिक दल, पदयात्रा व रथयात्रा छोड़कर परिवर्तन-यात्रा आयोजित करने पर उतारू हो गए हैं, पर इन सारे ही परिवर्तनों में हमें दरोगा रुस्तम अली के हृदय-परिवर्तन की घटना पर आश्चर्य हुआ। क्योंकि हमने सुन रखा था कि पुलिस और परिवर्तन में इसी प्रकार का वैर है, जैसा बाघ और बकरी में। न तो बाघ ही अपना स्वभाव बदलता है और न बकरी ही अपनी प्रवृत्ति। किंतु दरोगा रुस्तम अली ने अचंभा कर दिखाया और ऐसा ग़ज़ब का हृदय-परिवर्तन किया कि हम ही क्या, पूरा शहर सुनकर दंग रह गया।

हुआ यों कि भाई मुंगेरीलाल जी जब पहली बार जनसेवक बने, यानी एक वोट के रिकार्ड-तोड़ बहुमत से जीतकर संसद नामक देश की सबसे बड़ी पंचायत में पहुँचे तो सबसे पहले उन्होंने पुलिस का ओवर हॉल करने की ठानी। बहुत सुन रखा था मुंगेरीलाल जी ने कि दरोगा रुस्तम अली अभियुक्तों, आरोपियों के साथ अत्यंत क्रूर और अमानवीय व्यवहार करता है। वह किसी को पकड़ता है, तो उसको जेल भेजे बिना छोड़ता ही नहीं, लेकिन पकड़ने से जेल भेजने के बीच अभियुक्त पर जो बीतती है, वह या तो अभियुक्त ही जानता है या दरोगा रुस्तम अली। हो सकता है थोड़ा-बहुत ऊपरवाला भी जानता हो, लेकिन ज़्यादा नहीं, क्योंकि अपने थर्ड डिग्रीवाले करतबों को दरोगा रुस्तम अली इतना गुप्त रखता था कि कानों-कान किसी को भनक ही नहीं लग पाती थी। कभी-कभी पुलिस हिरासत में हुई किसी अभागे अभियुक्त की मृत्यु हो जाए तो पता चलता था कि दरोगा रुस्तम अली ने अपनी रुस्तमी दिखाते हुए कुश्तम-कुश्ती में एक शातिर अभियुक्त को चित कर दिया, यानी उस बाँस को ही तोड़-मोड़कर ठिकाने लगा दिया, जिससे बाँसुरी बन सकती थी और बजाई जा सकती थी।

इत्तेफ़ाक यह था कि अपराधों की बंसी बननेवाले जितने बाँस थे, वे सब थे मुंगेरीलाल जी के पाले-पोसे। तो साहब हुआ यह कि एक वोट के भारी बहुमत से जीतकर भाई मुंगेरीलाल जी जैसे ही संसद से शपथ लेकर लौटे, जा धमके पुलिस थाने में। देखा, दरोगा रुस्तम अली ने उसके चुनाव-क्षेत्र से पकड़कर लाए गए एक शातिर अभियुक्त को छत के पंखे से टाँग रखा है और नीचे से आग जलवाकर उसे हाँडी की तरह पकवा रहा है। भाई मुंगेरीलाल जी ने देखा तो उनकी सहनशक्ति जवाब दे गई। सोचा, ऐसी भयंकर क्रूरता! राक्षस भी नहीं करते होंगे, ऐसा अत्याचार तो।

धड़ाम से अपने-आपको कुर्सी पर गिराते हुए भाई मुंगेरीलाल बोले, 'शर्म नहीं आती, रुस्तम अली। यह क्या शैतानी कर रहे हो। आदमी हो कि जानवर! कान खोलकर सुन लो, हमारे रहते यह सब नहीं चलेगा अब।'

रुस्तम अली ने पहले पंखे से लटके हुए अभियुक्त

की ओर देखा और फिर भाई मुंगेरीलाल जी की ओर। कोई उत्तर सोच ही रहे थे कि भाई मुंगेरीलाल जी वन वे ट्रैफिक की तरह फिर शुरू हो गए–

'तुम जानते हो रुस्तम अली, अब समय बदल गया है। यह आज़ाद भारत है। अब पुलिसवालों को अँग्रेज़ों के ज़मानेवाला चरित्र बदलना होगा। यह जंगलीपन छोड़ना होगा। सभ्यता और शिष्टाचार सीखने होंगे। नहीं सीखोगे तो एक मिनट में वर्दी उतरवाकर रखवा ली जाएगी। किस अधिकार से तुमने इस बेचारे को पंखे से बाँधकर ऊपर लटकवा रखा है। कौनसा क़ानून ऐसा है, जो तुम्हें नीचे से आग जलाकर इसे भूनने की अनुमति देता है।

दरोगा रुस्तम अली अपनी तलवार मार्का मूँछों के बीच धीमे से हँसकर बोला, 'बात यह है एम॰पी॰ साहब, यह साला बहुत शातिर क़िस्म का बदमाश है। पिछले दिनों रजवाहे के निकट जो बस लुटी थी, उसका मुख्य अभियुक्त यही था। पर साला न तो माल ही बरामद करा रहा है और न अपने सहयोगियों का नाम-पता बताने को तैयार है। इतना कहकर दरोगा रुस्तम अली को फिर जो ताव आया तो मुंगेरीलाल जी की उपस्थिति का लिहाज किए बिना उठा और लाठी से उसकी पीठ उधेड़ते हुए बोला, 'क्यों बे....पिल्ले! बताता है कि नहीं बताता है! साला....का खसम!'

मुंगेरीलाल जी ने यह दृश्य देखा तो उनका मन करुणा से भर गया। बोले, 'क्यों रे दरोगा रुस्तम अली, जो बात तुम डंडे के ज़ोर पर पूछ रहे हो, वह बात भलमनसाहत से भी तो पूछी जा सकती है। इसे तुरंत पंखे से खोलो, नहीं तो मैं गृहमंत्री से तुम्हारी शिकायत करूँगा, मिनट-भर में छटी का दूध याद दिला दूँगा, बच्चू।'

रुस्तम अली ने देखा कि एम॰पी॰ साहब लावे की तरह फट पड़ने को तैयार हैं तो उसने चीख़कर पहरे के सिपाही को आवाज़ दी। बोला, 'अभियुक्त को खोल दो और सम्मानपूर्वक इसे थाने के द्वार तक छोड़ आओ।'

पहरे के सिपाही ने आदेश की तामील की। मुंगेरीलाल जी कुर्सी से उठे। दरोगा रुस्तम अली से हाथ मिलाया। बोले, 'आज़ाद भारत में पुलिस को थोड़ा सभ्य तो होना ही चाहिए, अब आप किसी और वक़्त उसे बुलाएँ और दुलार-पुचकारकर पूछें। सब कुछ उगल देगा यह।'

मुंगेरीलाल जी थोड़ा रुके, फिर बोले, 'याद रखो रुस्तम अली, जब तक सीधी उँगलियों से घी निकल सकता हो, तब तक अपनी उँगलियों को टेढ़ा नहीं करना चाहिए। एक तुम हो कि अपनी उँगलियाँ ही सीधी नहीं करते हो कभी। टेढ़ी ही रखते हो।'

दरोगा रुस्तम अली भी एक काइयाँ था। बोला, 'अब अपनी उँगलियाँ सीधी ही रहेंगी एम॰पी॰ साहब, टेढ़ी नहीं होंगी कभी। आप चिंता न करें जी।'

बात आई-गई हो गई। क्षेत्र में चर्चा चली कि दरोगा रुस्तम अली का हृदय-परिवर्तन हो गया है। अब थाने में किसी अपराधी पर कोई सख़्ती नहीं हो रही है। अभियुक्तों को सम्मानपूर्वक बुलाया जाता है। सम्मानपूर्वक बिठाया जाता है। प्रेमपूर्वक पूछताछ की जाती है और अंत में सम्मानपूर्वक उन्हें रुख़सत कर दिया जाता है। हर ऐसी घटना के बाद दरोगा रुस्तम अली अपनी केस डायरी (सी॰डी॰) में यह इबारत दर्ज करता है–

'एक 'शातिर' अभियुक्त को, जिसका नाम अमुक पुत्र अमुक है और जो अमुक स्थान का मूल निवासी है नामज़द रिपोर्ट के आधार पर अमुक स्थान से गिरफ़्तार किया। अभियुक्त को थाने में लाकर आदरपूर्वक पूछताछ की गई। उससे करबद्ध होकर पूछा गया कि बंधुवर! अगर अमुक चोरी में जाने या अनजाने आपका हाथ रहा है तो आप निस्संकोच हमें बता दें। हम आपको कुछ नहीं कहेंगे, बल्कि एक गिलास गरमा-गरम दूध पिलाएँगे और चालान कर जेल की हवा खाने के लिए

भेज देंगे, किंतु अभियुक्त अपराध से इंकार करता रहा। हमने उसे देसी शराब की एक थैली भेंट की, पट्ठा एक ही साँस में पूरी थैली चढ़ा गया, पर मुँह से कुछ नहीं फूटा। अतएव उसे नशे की हालत में झूमता-झामता थाने से जाने दिया गया।'

दरोगा रुस्तम अली की केस डायरी ऐसी ही घटनाओं से भरती चली गई। एक दिन इत्तेफ़ाक ऐसा हुआ कि सांसद मुंगेरीलाल जी के घर ही चोरी की वारदात हो गई।

मुंगेरीलाल जी के घर चोरी हुई तो वे दौड़े-दौड़े थाने आए। छूटते ही एक अदद रिपोर्ट दर्ज कराई। रिपोर्ट में एक लाख रुपये का माल चोरी हो जाने का दावा किया गया था। रिपोर्ट लिखकर भाई मुंगेरीलाल जी सीधे दरोगा रुस्तम अली के पास पहुँचे, पूरा माजरा उन्हें सुनाया।

दरोगा रुस्तम अली की आँखों में चोरी की बात सुनकर चमक-सी आ गई। बोला, 'पर एम॰पी॰ साहब, यह एक लाख का माल आपके पास आया कहाँ से? जहाँ तक हमारी जानकारी है, चुनाव तो आपने अपनी हवेली बेचकर लड़ा था। फूटी कौड़ी तो रही नहीं थी आपके पास, फिर साल-भर के अंदर-अंदर!'

मुंगेरीलाल जी ने दरोगा रुस्तम अली की बात सुनी तो मारे ताव के लाल भभूका हो गए। बोले, 'तुम पुलिस दरोगा हो या इनकमटैक्स अधिकारी। अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर जाने की कोशिश मत करो, वर्ना हमसे बुरा कोई नहीं होगा, चौबीस घंटों के अंदर चोरी खुल जानी चाहिए, अभियुक्त गिरफ़्तार हो जाने चाहिए तथा माल बरामद हो जाना चाहिए। नहीं तो बिस्तर बाँध लो और यहाँ से दफ़ा होने के लिए तैयार हो जाओ।'

दरोगा रुस्तम ने अली मुंगेरीलाल जी की धमकी सुनी तो डरा नहीं। बोला, 'एम॰पी॰ साहब। घबराइए मत, अभी पकड़ता हूँ अभियुक्तों को, लेकिन आप ज़रा अपना शक-वक तो बताएँ, कौन हो सकता है आपके यहाँ चोरी में शामिल।'

मुंगेरीलाल जी ने संदेह व्यक्त किया, 'हमारा ख़याल है, चोरी में वही अभियुक्त शामिल था, जिसे उस दिन तुमने पंखे से बाँधकर लटका रखा था। हमारे सूत्रों का कहना है कि चोरीवाली रात से पहलीवाली रात में वह थाने आया था। वह थाने में देखा गया है।'

ज़रूर देखा गया होगा मुंगेरीलाल जी, ज़रूर देखा गया होगा। हम इससे इंकार नहीं कर रहे हैं, कई बार अपराधी थाने की सुनगुन लेने चुपके से आ जाते हैं, यह सूँघने के लिए कि किस पुलिसकर्मी की ड्यूटी कहाँ लगाई गई है। पर आप चिंता न करें। अभी सब-कुछ हुआ जाता है चुटकी बजाते।

इतना कहकर दरोगा रुस्तम अली ने दो सिपाहियों को बुलाया और आदेश दिया कि खचेडू को पकड़ लाओ। छंगा पुत्र खचेडू पकड़कर लाया गया।

दरोगा रुस्तम अली ने उसे अपने बराबर वाली कुर्सी पर जगह दी। विनम्रतापूर्वक उससे हाथ मिलाया। बोला, 'भाई छंगा जी महाराज, यह जो एम॰ पी॰ साहब बैठे हैं न, मुंगेरीलाल जी, रात इनके यहाँ एक लाख रुपए की चोरी हुई है। इनका ख़याल है कि इस चोरी में आपका हाथ है। हम आपसे हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं कि चोरी में शामिल अपने दीगर साथियों का नाम बताएँ, माल बरामद कराएँ और हमारे साथ एक कप चाय पीकर जेल चले जाएँ। इस सारी महरबानी के लिए हम आपके बहुत-बहुत आभारी होंगे।'

दरोगा रुस्तम अली की दिल को छू लेने वाली अपील सुनकर छंगा पुत्र खचेडू ठहाका मारकर हँसा। बोला, 'कैसी बात कर रहे हो दरोगा साहिब! हम और चोरी! वह दिन गए, जब हम यह नेक काम किया करते थे, अब तो हम गऊ हो गए हैं, गऊ।'

दरोगा रुस्तम अली ने एक-दो बार और इसी तरह विनम्रतापूर्वक उससे चोरी का पता पूछा और फिर उसे सम्मान के साथ थाने से रुख़सत कर दिया। उस दिन की तारीख़ में दरोगा ने अपनी केस डायरी में लिखा—

एक शातिर अभियुक्त छंगा पुत्र खचेडू को श्री मुंगेरीलाल जी एम॰पी॰ के यहाँ चोरी के इल्जाम में पकड़ा, उससे प्रेमपूर्वक पूछताछ की, चाय आदि से उसकी ख़ातिर की, पर वह नहीं खुला। जिस पर उसे थाने से बाइज़्ज़त रुख़सत कर दिया गया।'

मुंगेरीलाल जी कई दिन तक थाने के चक्कर काटते रहे, पर कुछ हुआ नहीं। दरोगा रुस्तम अली अभियुक्तों को पकड़ता रहा, छोड़ता रहा।

इस घटना को कई साल गुज़र गए, पर आज तक हम यह फ़ैसला नहीं कर सके कि इनमें से कौन सही था, भाई मुंगेरीलाल जी या दरोगा रुस्तम अली। क्योंकि यह लोकतंत्र है न, यह ऊँट की तरह है और इसकी कोई कल सीधी नहीं है।

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)** 246701
मो॰ : 07838090732

('आओ भ्रष्टाचार करें' व्यंग्य-संग्रह से)

बाल एकांकी

प्रकाश मनु

हड़बड़-गड़बड़

(आशु के झटपटनामे में एक से एक नए कारनामे और नए-नए किस्से जुड़ते ही चले गए। उनमें सबसे मजेदार तो यह था कि एक दिन सारे बच्चे पेड़ पर चढने का खेल खेल रहे थे। सारे बच्चे सँभल-सँभलकर चढ़ रहे थे। मगर आशु तो पूरा झटपटिया था!)

पात्र-परिचय

आशु उसके दोस्त मोनू, रघु, संजू, देबू वगैरह आशु के स्कूल की मैडम, मम्मी, गुंजा दीदी, भैया तथा भीतर की रहस्यपूर्ण आवाज़

पहला दृश्य

(आशु का घर। आशु कुछ परेशान है और अपने पढ़ने के कमरे में अकेला टहलता हुआ खुद से बातें कर रहा है।)

आशु : (मन-ही-मन) ओफ़, मैं क्या करूँ? कैसे बचूँ अपने इस नए नाम की आफ़त से। मेरा नाम झटपट सिंह कब पड़ा, यह तो अब खुद मुझे ही नहीं पता। पर क्लास में अब मुझे आशु कोई नहीं कहता। सब झटपट सिंह कहकर बुलाते हैं। और तो और, अब तो अध्यापक भी मेरा यह नया, निराला नाम जान गए हैं। और जब ऐसा मज़ेदार नाम उन्हें मिल गया है, तो भला आशु कौन कहे, क्यों कहे!

(कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। गालों पर हाथ रखकर सोचने लगता है। तभी उसके भीतर से आवाज़ आती है।)

आवाज़ : वैसे तुम खुद भी इसके लिए ज़िम्मेदार हो आशु।

आशु : मैं! मैं! मैं? क्या कह रहे हो तुम? कौन हो तुम?

आवाज़ : मैं! मैं कौन हूँ? मुझे नहीं जानते? अरे, मैं तो तुम्हारे भीतर ही हूँ आशु, तुम्हारे मन की आवाज़!

आशु : मन की आवाज़!? पर तुम क्या कहना चाहती हो?

आवाज़ : देखो आशु, किसी और को दोष देने से कोई फ़ायदा नहीं। तुम पहले अपने आप को तो देखो। आख़िर अपने इस नाम के लिए ज़िम्मेदार तो तुम खुद ही हो न! चाहे स्कूल का काम हो या खेलकूद के मैदान के करतब और क्रीड़ा, काम कोई भी हो, तुम उसे झटपट कर डालना चाहते हो। फिर चाहे वह कितना ही गड़बड़-सड़बड़ या आधा-अधूरा ही क्यों न हो! इसी वजह से हर बार तुम्हारी हँसी उड़ती है। उफ़, कितनी बुरी तरह हँसी उड़ाते हैं दोस्त तुम्हारे।

(आशु उठकर धीरे-धीरे चलता हुआ खिड़की के पास पहुँचता है और हाथ से फ्रेम पकड़कर बड़ी उदास मुद्रा में खिड़की के बाहर का दृश्य देखने लगता है।)

आशु : दोस्त! उन्हें कौन कह सकता है दोस्त? अरे, वे तो जैसे मेरे दुश्मन हैं, दुश्मन। हर बार वे मजे ले-लेकर जोर से हँसते हैं, हा-हा, हो-हो-हो! फिर चाहे मेरी जान पर बन आए। उफ़, आफ़त है, बहुत बड़ी आफ़त।

(माथे पर चिंता की लकीरें। एकाएक उत्तेजना में तेज़-तेज़ क़दमों से टहलने लगता है।)

आशु : हर बार मैं कसम खाता हूँ कि 'नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। आगे से ऐसा नहीं होगा। मैं खुद को बदलूँगा। मगर अगली बार

फिर वही चक्कर। चक्कर क्या घनचक्कर! पता नहीं क्यों, मैं इससे निकल ही नहीं पाता। और! और मुझे तो यह भी नहीं पता कि दोस्तों ने मुझे कबसे झटपट सिंह कहना शुरू किया?

आवाज़ : लेकिन तुमने ख़ुद को बदलने की कोशिश कब की? जब तक तुम ख़ुद को नहीं बदलोगे, कुछ नहीं होगा, कुछ नहीं!।

दूसरा दृश्य

(आशु के सारे दोस्त इकट्ठे होकर बातें कर रहे हैं। बातें आशु की ही हो रही हैं और उसके झटपटपने की आदत को याद करके सब बड़े जोर से हँसते हैं।)

भुवन : अच्छा, तुम्हें याद है रघु कि आखिर आशु का ऐसा कौनसा महान कारनामा था, जिसकी वजह से हम सब दोस्तों ने मिल-जुलकर उसे 'झटपट सिंह' की पदवी दी थी। और हो-हो, हो-हो करते हुए उसकी तारीफ़ में गाने गाए थे!...

रघु : (याद करने की कोशिश में माथे पर हाथ फेरते हुए) हाँ, याद आया, पहला कारनामा उसका यही था कि हम दोस्तों के क्रिकेट मैच में एक बड़ी ही नाज़ुक सिचुएशन में वह दनादन चौके-छक्के उड़ाने के अरमान के साथ मैच में उतरा था और पहली बार में ही 'कैच आउट' हो गया था।

मोनू : (उछलकर) बिल्कुल ठीक। अपनी टीम का वह आख़िरी खिलाड़ी था और यार-दोस्तों ने ख़ूब समझाकर भेजा था कि भैया, तुम्हें आउट नहीं होना। ज़्यादा जोश में मत आना, तुम्हें सिर्फ़ तीन रन बनाने हैं। एक-एक करके आराम से बनाना, ताकि कोई ख़तरा न हो। बस, जीत पक्की!

भुवन : (अजीब सी कौतुक मुद्रा) पर झटपट सिंह भला क्यों मानता? उसने पहली गेंद में ही दन्न से चौका मारा और गरदन गर्व से अकड़ गई कि लो, मुझे क्या समझा है?

नीटू : (हँसते हुए) मगर जब अंपायर ने 'आउट' का इशारा किया और विपक्षी टीम के कप्तान के हाथ में गेंद नज़र आई, तब समझ में आया, हाय! कैच आउट।

(सारे दोस्त हो-हो करके हँसने लगते हैं।)

रघु : ओह, अब तो सब याद आ गया। तब जीतती हुई टीम को अपने महान करतब से हरा देने के कारण आशु की टीम के साथियों ने शुरू में उस पर खूब फब्तियाँ कसीं। वो भी एक अजब नाटक था, बड़ा अजब नाटक!..

नीटू : (गुस्से में) ओ रे ओ कमबख्त! यह क्या किया?

रघु : (व्यंग्य से) वाह रे वाह, मेरे झटपटिया।

(एकाएक सभी मिलकर गाने लगते हैं--)

झटपट सिंह, झटपट सिंह,
हमारे प्यारे झटपट सिंह!!

फिर सभी हँसते हुए उसकी आरती उतारने लगते हैं-

झटपट सिंह देवा,
हमारे झटपट सिंह देवा,
जीता हुआ मैच, तुम्हीं ने हाय, हराया।
ऐसा मंतर डाला तुमने, ऐसा जंतर डाला,
जहाँ सफेद था, नज़र वहाँ
अब आता हमको काला।
निकाल दिया तुमने
हम सब का हाय, दिवाला।
तुम तो दुख के दाता हो
और खुशियों के लेवा।
जय हो झटपट देवा, जय हो झटपट देवा।)

(कहकर सभी एक साथ सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं और हँसने लगते हैं।)

तीसरा दृश्य

(आशु के झटपटनामे में एक से एक नए कारनामे और नए-नए किस्से जुड़ते ही चले गए। उनमें सबसे मज़ेदार तो यह था कि एक दिन सारे बच्चे पेड़ पर चढ़ने का खेल खेल रहे थे। सारे बच्चे सँभल-सँभलकर चढ़ रहे थे। मगर आशु तो पूरा झटपटिया था!)

आशु : (जोश में आकर) देखोजी, मैं तुम्हें झटपट चढ़कर दिखाता हूँ। और लो जी, अभी पहुँचा मैं पेड़ की सबसे ऊँची डाली पर!

पन्नू : देखो भाई झटपट सिंह, गिर न जाना।

आशु : (जोश में आकर) अरे, गिरें मेरे दुश्मन। मैं भला क्यों गिरूँगा? हाँ, मैं झटपट सिंह हूँ तो जरा झटपट काम करके तो दिखाना होगा न?

(आशु चढ़ा और चढ़ता ही चला गया। सब बच्चे देख-देखकर हैरान। आशु देखते-ही-देखते पेड़ की सबसे ऊँची डाली तक जा पहुँचा और उछलकर उसके ऊपर बैठ गया। मगर अगले ही पल बेचारा जमीन पर लुढ़कता नज़र आया।)

आशु : हाय-हाय, हाय-हाय!!

दोस्त : (जल्दी से वहाँ आकर) क्या हुआ आशु, क्या हुआ?

आशु : क्या बताऊँ यार, मैं ऊपर पहुँच तो गया था, पर लगता है कि वो डाली जरा कमजोर थी, तो ऊपर से नीचे धड़ाम!। हाय-हाय, लगता है, पैर की हड्डी! फ्रैक्चर। बहुत दर्द है।

भुवन : (कुछ सोचकर) घर पर इसकी मम्मी को फ़ोन करते हैं!.

रघु : हाँ-हाँ, ठीक।

(बेचारा हड़बडिया आशु महीनों प्लास्टर चढ़ाए चारपाई पर पड़ा रहा। तब कहीं स्कूल जाने लायक हो पाया। इस बीच लगातार वह सोचता रहा कि आख़िर उसके साथ ही यह गड़बड़झाला क्यों होता है?)

आशु : (चारपाई पर लेटे हुए अपने आप से) ओह, पता नहीं मेरे साथ क्या चक्कर है? ऐसे एक नहीं, अनगिनत कारनामे हैं और मैं बचते-बचते भी उनके फंदे में फँस ही जाता हूँ। और यों यह नाम मुझ पर ऐसा फिट बैठा कि उतरने का नाम ही नहीं लेता। बल्कि अब तो मैंने खुद-ही-खुद को समझा लिया है कि ना भाई! मैं आशु नहीं, झटपट सिंह हूँ। ओह, मेरी मुश्किलों का तो कोई अंत ही नहीं।

भीतर की आवाज़ : मैंने तुमसे कहा था न, जब तक तुम खुद को बदलने की कोशिश नहीं करते, कुछ नहीं होगा, कुछ नहीं।

आशु : हाँ-हाँ, मुझे याद है तुम्हारी बात। पर जाने क्यों, मैं खुद को बदल ही नहीं पाता। खैर, देखूँगा अब...

चौथा दृश्य

(आशु का घर। उसने फिर स्कूल जाना शुरू कर दिया है, पर उसके हड़बड़ियापन के किस्से बढ़ते ही जाते हैं। घर पर मम्मी-पापा, गुंजा दीदी सभी उसकी हालत को लेकर परेशान हैं। उसे बार-बार समझाने की कोशिश करते हैं, ताकि वह ऐसी बेवकूफ़ियाँ न करे।)

आशु : (परेशान होकर) मम्मी, मेरे मोज़े नहीं मिल रहे। जल्दी से ढूँढ़ दो न मम्मी, प्लीज़। स्कूल की बस आने ही वाली है!.

मम्मी : आशु, तू कुछ ज्यादा लापरवाह नहीं हो गया? तेरी चीज़ें टाइम पर मिलती क्यों नहीं? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तू हड़बड़ी थोड़ा कम कर।

पापा : क्या कहा, आशु के जूते नहीं मिल रहे? इतना बड़ा हो गया, क्या इसकी चीज़ें अब भी हमें ढूँढनी पड़ेंगी? स्कूल से आकर तो झटपट यहाँ-वहाँ पटक देता है। थोड़ा सँभालकर रखे तो!?

गुंजादीदी : क्या कहा आशु, तेरी हिंदी की किताब नहीं मिल रही? तो मैं कहाँ से ढूँढूँ भैया? स्कूल से आकर तो तू इधर-उधर पटक देता है। फिर बस के आने का टाइम होता है तो ढूँढने बैठता है, झटपट-झटपट!

आशु : (मन ही मन) ओह, सभी मुझे लेकर कितने परेशान हैं। ग़नीमत बस यही कि मेरे झटपट सिंह नाम की बला अभी घर में नहीं पहुँची। पर मैं मन में बड़ा डर-सा लगता है कि कहीं यह नए नाम की बला उड़ते-उड़ते घर तक भी आ गई, तब तो मेरी ख़ैर नहीं,

सचमुच ख़ैर नहीं।

(मगर इस चक्कर में सावधानी बरतते-बरतते भी कुछ और ही गड़बड़ होने लगा, तो क्या करे बेचारा आशु! वह तो अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करता है। घर में आते ही खाना खाकर सीधे होमवर्क करने बैठता है। झटपट-झटपट सभी कुछ कर डालता है।)

आशु : (मन-ही-मन) चलो, होमवर्क तो निबटा। हालाँकि लगता है, कहीं-कहीं थोड़ी गड़बड़ हो गई है। थोड़ा और सोच-समझकर करता तो? चलो, कोई बात नहीं, कल देखेंगे। कम से कम आज तो यह सिरदर्दी ख़त्म। वैसे भी झटपट-झटपट न करूँ, तो कैसे पूरा हो होमवर्क? कोई यह समझता ही नहीं, मैडम भी नहीं। तभी तो मेरी हर बात पर हँसती हैं। ख़ैर, अब जाता हूँ मैं खेलने!।

पाँचवाँ दृश्य

(क्लास रूम का दृश्य। मैडम बच्चों का होमवर्क जाँच रही हैं।)

मैडम : ओह, यह किसकी कॉपी है भई, इसमें तो दर्जनों ग़लतियाँ हैं; और राइटिंग ऐसा कि सुभान अल्लाह। लगता है, पूरी कॉपी में कीड़े-मकोड़े मरे पड़े हैं। ज़रूर यह हमारे महान झटपटिया आशु की होगी। अरे, ज़रा ध्यान से किया करो झटपट सिंह!

(मैडम फिर धीरे से हँसती हैं। मगर उनके हँसते ही सारी क्लास हो-हो करके अट्टहास करने लगती है। बेचारे झटपट सिंह का मुँह लाल हो उठता है, हाय, इतने सारे दुश्मन मेरे पीछे पड़े हैं!)

आशु : मुश्किल तो यह है कि मैं कितना ही सुधरना चाहूँ, सुधर नहीं पाता और परेशानियाँ और बढ़ती ही जाती हैं।

छठा दृश्य

(घर में सुबह का दृश्य। कल मैडम ने हिंदी की एक कविता याद करके आने के लिए कहा था। आशु उसी की जुगत में है।)

आशु : वाह, आज का दिन कितना अच्छा है। आज मैंने सुबह उठते ही झटपट रामधारीसिंह दिनकर की 'हठ कर बैठा चाँद एक दिन' कविता याद कर ली। फिर झटपट बस्ता लगाया। झटपट नहा-धोकर तैयार हुआ और समय से दस मिनट पहले जाकर स्कूल बस के स्टॉप पर खड़ा हो गया। इसे कहते हैं चुस्ती, वाह।

(कहकर आशु विजेतावाले अंदाज़ में इधर-उधर देखने लगता है, ताकि कोई मिले तो उस पर रोब जमाए)

आशु : (अपने आपसे) आज इतने ज़ोरदार ढंग से कविता सुनाऊँगा कि क्लास के बच्चे तो क्या, मैडम भी हैरान रह जाएँगी।

(और फिर मन-ही-मन उसने दोहराना शुरू कर दिया, 'हठ कर बैठा चाँद एक दिन, माता से यह बोला, सिलवा दो माँ, मुझे ऊन का मोटा एक झँगोला!!')

राहुल : (पास आकर) अरे झटपट सिंह, भूल गए, आज शनिवार है? रोज़ वाली स्कूल ड्रेस क्यों पहनी? आज तो विवेकानंद हाउस वाली पीली शर्ट पहननी थी न तुम्हें?

आशु : ओह, मारे गए।

(झटपट सिंह को काटो तो ख़ून नहीं। वह तो भूल ही गया था कि आज शनिवार है। अब तो आफ़त ही आ गई। कहीं प्रिंसिपल के सामने परेड!! स्कूल बस के आने में डेढ़-दो ही मिनट बाक़ी थे। झटपट सिंह को एक बात सूझी। अपना बैग राहुल के पास रखकर बोला)

आशु : राहुल, मेरे अच्छे दोस्त! बस, मैं अभी घर गया और आया। यह बैग तुम देखते रहना। बस आए तो रुकवा लेना, मैं विवेकानंद हाउस वाली शर्ट घर से उठा लाता हूँ। वहीं स्कूल में पहन लूँगा।

(आशु दौड़ा, ख़ूब दौड़ा। मगर बेचारा कितना दौड़े। घर से शर्ट लेकर भागा-भागा बस स्टॉप पहुँचा, तो वहाँ बस पों-पों, पों-पों करके शोर मचा रही थी। राहुल चिढ़ा हुआ सा गेट पर ही खड़ा था। आशु ने झट से बैग लिया और राहुल के पीछे-पीछे बस में चढ़ा। मगर तब तक उसके हाथ में जो शर्ट थी, वह हाथ से छूट गई। खिड़की से उड़कर

नीचे आ गई!)

आशु : रोको रोको, ड्राइवर, बस रोको। मेरी शर्ट!!

ड्राइवर : अरे भई, कहाँ-कहाँ बस रोकूँ? ऐसे तो देर हो जाएगी। जल्दी से उठा लाओ अपनी शर्ट।

(आशु नीचे उतरा तो मालूम पड़ा, शर्ट बस के पहिए के नीचे आकर गंदी हो गई थी। हाँफते हुए झटपट सिंह बस में चढ़ा तो जल्दबाज़ी में शर्ट और निक्कर दोनों बस के दरवाज़े में फँसकर चीं-चिर!! मगर आशु का तो इधर ध्यान था ही नहीं था। हाँ, जब वह शर्ट पहनकर असेंबली में पहुँचा, तो!)

रघु : (हँसते हुए) देखो, देखो आए अपने फटफट सिंह...

मोनू : (मज़े में गाना सा गाते हुए)
आइए, आइए, फटफट सिंह।
वाह, क्या रूप बनाए फटफट सिंह?

भुवन : (गरदन लचकाकर) क्योंजी, क्योंजी, झटपट सिंह?

रघु : ना जी, ना जी, फटफट सिंह।

आशु : पता नहीं, दोस्त आज मुझे झटपट सिंह नहीं, फटफट सिंह कहकर क्यों बुला रहे हैं! मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा कि ये फटफट सिंह कौन है?
(मगर फिर जब अपनी फटी शर्ट और निक्कर देखी, तो सब समझ गया कि गड़बड़ कहाँ हुई है।)

आशु : ओह, तो फटफट सिंह मैं ही हूँ। हे राम!

(उस दिन जहाँ भी आशु गया, स्कूल में, हर जगह उसे यही सुनाई दिया! फटफट सिंह, फटफट सिंह, फटफट सिंह!! बेचारा मुश्किल से अपने आँसुओं को रोक पाया।)

सातवाँ दृश्य

(आशु घर आया तो मम्मी और दीदी ने हैरान-परेशान होकर पूछा!)

मम्मी : अरे, ये कपड़े कहाँ फाड़ आया आशु?

गुंजादीदी : ओह, तेरी शक्ल आज कैसी हो रही है आशु? किसी ने मारा है क्या?

आशु : नहीं वो! बात यह थी कि मेरी शर्ट फट गई तो सब मेरा मज़ाक उड़ा रहे थे! फटफट सिंह! फटफट सिंह कहकर हँस रहे थे। मुझे तो रोना आ गया।

मम्मी : (प्यार से सिर पर हाथ फेरते हुए) तू उनकी परवाह ही क्यों करता है? हाँ, ख़ुद को ज़रा बदल आशु। इतना हड़बड़ियापन भी ठीक नहीं।

आशु : ठीक है मम्मी। (कहते-कहते स्वर भर्रा जाता है।)

(आशु ने कान पकड़े। ख़ुद को सुधारने की कोशिशें कीं, कुछ सुधरा भी। मगर उन दोस्तों को क्या कहे, जो आज भी उसे झटपट सिंह कहकर ही बुलाते हैं।)

सूत्रधार : झटपट सिंह की यह कहानी बरसों पहले की है। आज तो वह बड़ा होकर इंजीनियर हो गया है और मुंबई की किसी बड़ी कंपनी में काम करता है। मगर बचपन के यार-दोस्त कभी मिल जाते हैं, तो दूर से चिल्लाकर पुकारते हैं!

दोस्त : झटपट सिंह!! ओ रे प्यारे झटपट सिंह।

(एक क्षण के लिए चौंकता है आशु, फिर ठहाका मारकर हँसने लगता है!)

आशु : चलो, इसी बहाने बचपन की याद तो आई!

(परदा गिरता है।)

545, सेक्टर-29, फरीदाबाद (हरियाणा)121008;
दूरभाष: 0129-2500030; मोबाइल: 09810602327;
ईमेल: prakashmanu01@ gmail.com
वैबसाइट: www.prakashmanu.in

(हास्य-विनोद के बाल नाटक से)

लघुकथाएँ

अभिमन्यु अनत

अभिमन्यु अनत ने कथा-कुल की प्राय: सभी विधाओं में रचनाएँ लिखी हैं। उनके 32 उपन्यास, 7 कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथा लघुकथा का एक संग्रह 'इंसान और मशीन' भी छप चुका है। अभिमन्यु अनत ने और भी लघुकथाएँ लिखी हैं, जो 'वसंत', 'सारिका' तथा दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। यहाँ उनकी कुछ लघुकथाएँ प्रस्तुत हैं, जो 'इंसान और मशीन' से ली गईं हैं।

सबसे पहले कौन?

पार्टी अपनी समाप्ति पर थी। पाँच प्रतिष्ठित व्यक्ति बगीचे के उस भाग में गोलमेज के सामने बैठे हुए थे जहाँ सेगा का कोलाहल कुछ कम था। कई विषयों पर की बहस के बाद प्रश्न उठ गया कि किसका दुनिया के सबसे पुराने और सबसे महत्त्वपूर्ण काम से संबंध था।

इस पर किसान ने कहा।

–खेती करके अन्न पैदा करना दुनिया का सबसे पहला महत्त्वपूर्ण और पुराना काम रहा होगा। बगल में बैठे डॉक्टर ने झट कहा।

–ग़लत! संसार का सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य किसी डॉक्टर ने किसी बच्चे को जन्म दिलाकर किया होगा।

–बच्चे के पैदा होने के लिए घर चाहिए। मेरे लोगों ने सबसे पहले घर बनाकर मानव को सभ्यता दी होगी।

कारीगर की इस बात पर बूढ़े दार्शनिक ने हँसते हुए कहा।

–इस दुनिया का पहला सही कार्य तो किसी दार्शनिक ने किया होगा।

पास के बैठे मंत्री ने व्यंग्य के साथ हँसकर पूछा।

–वह कैसे प्रोफ़ेसर साहब?

–सृष्टि के समय असभ्यता के कारण दंगे-फ़साद और अस्त-व्यस्तता रही होगी, खलबली और अशांति रही होगी। इन प्रश्नों को हल करके लोगों को सही ज्ञान के साथ आगे बढ़ाने का काम सबसे पहले हुआ होगा और इसे मुझ जैसे किसी दार्शनिक ने ही किया होगा।

मंत्री जी ने बड़ी गंभीरता के साथ पूरे आत्मविश्वास से पब्लिक मीटिंग वाले स्वर में कहा।

–प्रोफ़ेसर साहब, तुम विद्वान होकर बच्चों जैसी बातें करने लगे।

–तुम्हारा मतलब है मेरी बातें ग़लत हैं?

–एकदम ग़लत क्योंकि विषय था सबसे पुराने काम और आपकी बातों से तो यह साफ़ ज़ाहिर हो गया कि दुनिया के सबसे पुराना काम दार्शनिक द्वारा नहीं बल्कि राजनीतिज्ञ द्वारा हुआ होगा।

–वह कैसे?

मंत्री ने उसी गंभीरता और आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया।

–आप जिस दंगे-फ़साद और अस्त-व्यस्तता तथा खलबली और अशांति के मिटाने के काम का जिक्र कर रहे हैं, उन्हें तो राजनीति ने सबसे पहले फैलाया होगा, तब तो आपने उन्हें दूर किया। स्पष्ट है कि आपसे भी पहले मेरे लोगों ने काम किया था।

उद्घाटन

रावण ने आदेश देकर मेघनाथ और कुंभकरण को अपने पास बुलवाया। आँखों से अंगारे बरसाते हुए उसने चिल्लाकर कहा–

–किस काम के लिए तुम में से एक मेरा बेटा दूसरा मेरा भाई होते हुए भी मेरे सेनापति भी हो?

दोनों सिर झुकाए खड़े रहे।

–तुम्हारे होते हुए वानरों ने सागर पर कन्याकुमारी से

लेकर लंका तक सेतु बाँध बना डाला। अब राम को यहाँ पहुँचने में कौन रोक सकेगा? तुम उन्हें रोक न सके तो क्या साबोताज भी नहीं आता तुम्हें? मैं चाहता हूँ कि इसी वक़्त उस बाँध को उड़ा दिया जाए। इसके लिए अगर लंका के सभी डाईनामाइट का उपयोग करना पड़ जाए तो भी कोई हर्ज नहीं बशर्ते कि बाँध उड़ा दिया जाए।

आदेश पाकर मेघनाथ और कुंभकरण सेना सहित बाँध की ओर दौड़ पड़े। तीन दिन के भगीरथ प्रयत्न के बाद हाँफते हुए दोनों रावण के दरबार में पहुँचे।

–बाँध क्यों नहीं उड़ा? रावण ने कड़ककर पूछा।

–यह नितांत असंभव है महाराज। मेघनाद से सहमकर कहा।

–असंभव क्यों?

इस बार कुंभकरण के कंट्रेक्टर ने नहीं बनाया, बल्कि नल और नील ने अपनी देख-रेख में बनवाया है और फिर इसमें जिस सीमेंट का उपयोग हुआ है उसमें किसी तरह मिलावट नहीं।

यह सुनकर रावण और भी आग बबूला हो गया। अपने पैरों को जमीन पर मारते हुए उसने पूछा।

–तो फिर किसी भी हालत में इस बाँध को चकनाचूर नहीं किया जा सकता?

–बस एक ही उपाय था।

–वह क्या?

–अगर सुग्रीव का कोई मंत्री उसका उद्घाटन कर देता, तब तो वह एक ही विस्फोट के धमाके के साथ सागर में मिल जाता।

–तो फिर यह उद्घाटन कब हो रहा है?

–राम के कह देने पर कि प्रजा के सर किसी भी तरह की फिजूलखर्ची अन्याय है यह प्रश्न ही नहीं।

–उद्घाटन नहीं होगा?

–अब क्या होगा जबकि राम वानर सेना के साथ उस पर चल पड़ा है।

रावण चिल्लाता हुआ खड़ा हो जाता है।

नन्हे मछुए का भाग्य

उसकी नाव प्रवाल रेखा की चट्टानी से टकराकर कंदुलक्रीड़ा करने लगी थी। फेनिल ज्वारभाटे प्रलयंकर नाद के साथ उसे निगल जाने के प्रयास में था कि तभी एक काली चट्टान पर उसे वह अधखुली सीपी दिखाई पड़ी थी। मटर के बराबर एक दाना था उसमें, जिसकी चमक से उसकी आँखें चकाचौंध हो गई थीं। डूबते सूरज की किरणों का समाप्त प्रकाश उसी में समा गया-सा प्रतीत हुआ था। अपने प्राणों को हथेली पर लेकर उसने सीपी को अपनाया था। उसे हथेली में पाकर उसने ऐसा आभास किया था, गोया उसके हाथ आ गई हो।

अपूर्व साहस के साथ अपनी नाव को खेते हुए वह किनारे पर पहुँचा था। उस दिन की फँसी हुई मछलियों को छोड़कर वह मुट्ठी में सीपी बंद किए घर को दौड़ पड़ा था। अपने बाप के सामने पहुँचकर हाँफते हुए उसने हथेली आगे बढ़ा दी थी। उसके बाप ने विस्फारित नेत्रों से उस चीज़ को देखा था, पर उसे विश्वास नहीं हुआ था कि उसके बेटे के हाथ में जो चीज़ थी, वह मोती हो सकती थी। उसने सुना अवश्य था कि ओस की बूँद जब समुद्र के खारे पानी को भेदती हुई अथाह गहराई में पहुँचती है, उस समय मौके की ताक में खुली हुई सीपी उसे निगलकर बंद हो जाती है और फिर कुछ दिनों के बाद शबनम की वह बूँद मोती में बदल जाती है। इस सुनी हुई बात पर उसे विश्वास नहीं हुआ था। जब वह अपने बेटे को उस आश्चर्यजनक चीज़ के बारे में सही-सही बता न सका, तो उस समय उसका बेटा दौड़ता हुआ एक ऐसे व्यक्ति के पास पहुँचा, जो गाँव का सबसे होशियार समझा जाता था।

वहाँ से भी निराश होकर मछुए का बेटा एक जौहरी के पास पहुँचा। जौहरी ने सीपी को उलट-पलट कर देखा। उसके भीतर के दाने को भी गौर से देखता रहा पर उसे एक नन्हे से मछुए के भाग्य पर विश्वास नहीं हुआ। वह यह मानने को तैयार नहीं हुआ कि एक ग़रीब मछुए के हाथ मोती आ सकता था। अत: उसका अपना निर्णय यही रहा कि वह मोती नहीं था। मछुए के बेटे को इस बात का विश्वास नहीं हुआ। वह दौड़ता रहा। कोई तीन-चार व्यक्तियों के बाद उसे एक ऐसे व्यक्ति का नाम बताया गया, जो सचमुच ही हीरे का विशेषज्ञ था। रातभर दौड़ते रहने के बाद सूरज की प्रथम रश्मियों के साथ वह उस व्यक्ति के सामने पहुँचा। विशेषज्ञ ने कहा–

–देखूँ तो क्या चीज!

नन्हे मछुए ने जेब में हाथ डालाा और अवाक् रह गया। यात्रा के दौरान सीपी उसकी जेब से छूटकर जाने कहाँ गिर गई थी।

–संवादिता, त्रिओले
मॉरिशस

व्यंग्य

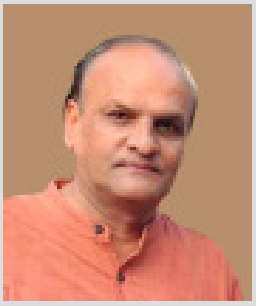

सिधवागढ़ के लुटेरे मंत्री

लोग उदास होकर लौट जाते, लेकिन उन लोगों के जाने के बाद ये मंत्री गरीब लोगों के नाम से ही कुछ मुद्राएँ निकालकर अपने रिश्तेदारों तक पहुँचा देते। कभी-कभी अपने दूर के रिश्तेदारों के नाम से भी मुद्राएँ हड़प लेते थे।

गिरीश पंकज

बैताल के पीछे-पीछे विक्रमादित्य फिर पहुँच गया और शव को कंधे पर लादकर हमेशा की तरह महल की ओर चल पड़ा।

बैताल हँसा-'हे...हे...हे...राजन, कैसे हो?... बने-बने?. ..राम-राम!'

बैताल की मसख़री पर विक्रमादित्य को गुस्सा आ रहा था, मगर मुर्दों से क्या बहस करना? यह सोचकर वह चुपचाप चलता रहा। जैसे कोई पराजित आम आदमी चलता है...जैसे गुलाम हो चुकी चेतनाएँ चलती हैं...जैसे अपनों से आहत बुढ़ापा चलता है।

राजन की कोई प्रतिक्रिया न पाकर बैताल ख़ामोश हो गया।

कुछ देर चलने के बाद उसके भीतर का खुराफाती और 'बकवादी' मन फिर सक्रिय हुआ, और उसने कहा, 'राजन, बहुत कठिन है डगर पनघट की। अरे, बचके कहाँ जाओगे? जहाँ जाओगे, हम जैसे लोगों को ही पाओगे। सुना है, तुम्हारे राज्य में अधिकारीवर्ग बड़ा खुश है? ऐश कर रहा है? मालामाल है? मगर जनता कंगाल है?...सच बताना, तुम्हारे राज्य का क्या हाल है?'

विक्रमार्क मौन धारण किए चला जा रहा था। नंगे लोगों से ज़्यादा भिड़ना भी तो ठीक नहीं। कीचड़ में पत्थर मारो, तो अपने ही कपड़े ख़राब होते हैं। सो, राजा चुपचाप चलता रहा।

बैताल ने हँसते हुए कहा, 'राजन्, ये ससुरा समय इतना ख़तरनाक होता है कि काटे से कटता ही नहीं। केवल सृजन या गप्प-सड़ाका ही समाधान है इसका। लेकिन मेरे पास सृजन-फ्रिजन के लिए अवकाश ही नहीं। मैं तो गप्प मारने की वैश्विक-कला में माहिर हूँ। वैसे तो सुना है कि तुम्हारे राज्य में कुछ नए-नए और अनोखे-से यंत्रों का आविष्कार भी हो गया है, जिसके सहारे लोग पूरी दुनिया की जानकारी हासिल कर लेते हैं? और घंटों उसी यंत्र को निहारते रहते हैं। राह चलते लोग एक-दूसरे से वार्तालाप भी कर सकते हैं? देखो, दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँचती जा रही है, और तुम हो, कि 'शव-यात्रा' में लगे हुए हो? बड़े पिछड़े हुए जीव हो।'

बैताल की बातें सुन-सुनकर राजन का दिमाग ख़राब हो रहा था। मन कर रहा था कि तलवार निकाले और बैताल के टुकड़े-टुकड़े कर दे। मगर यह संभव नहीं था। विक्रम मजबूर था, क्योंकि योगी की साधना के लिए यह बैताल बड़ा ज़रूरी था, इसलिए ख़ामोशी के साथ बैताल की 'बे-ताल' बकवास सुनता रहा।

मगर बैताल कहाँ रुकने वाला था। वह फिर बोलने लगा : 'समय बिताने के लिए करना है कुछ काम। शुरू करता हूँ एक कहानी, लेकर श्मशान का नाम. ..। हे राजन, 'सिधवागढ़' नामक एक किसी राज्य में एक मंत्री हुआ करता था। उसका नाम था लूटेश्वरनाथ। राजा दयाशरण ने जनसेवा के लिए राज्य के मंत्रियों के लिए एक कोष बना रखा था, जिसमें लाख-लाख स्वर्ण-मुद्राएँ जमा रहती थीं। इसका उद्देश्य था कि जब कभी कोई ज़रूरतमंद गरीब मंत्री के पास आए तो मंत्री अपने कोष से कुछ मदद कर दे। इस कोष को 'स्वेच्छानुदान कोष' कहा जाता था। इस कोष की व्यवस्था के बाद से लूटेश्वरनाथ की तो निकल पड़ी, और चमत्कार हो गया। जनता तो जहाँ की तहाँ रही, लूटेश्वरनाथ और उसके परिजन मालामाल होते गए। लूटेश्वरनाथ ने अन्य मंत्रियों को भी समझाया कि मंत्री होने के नाते उनके कर्तव्य क्या-क्या हैं। मंत्री का मतलब ही होता है, जो मन की तंत्रियों के अनुरूप काम करे। मन मालामाल होना चाहता है, और इसके लिए राजा ने स्वेच्छानुदान की सुंदर व्यवस्था कर ही दी है। इसलिए खाओ-पीओ, ऐश करो।'

लूटेश्वरनाथ की बात सुनकर नैतिकेश्वर, सत्यव्रतसिंह और ज्ञानशरण ने कहा, 'यह पाप है। हम ऐसा नहीं कर सकते। जनता का पैसा खाना हराम है। अमानत में खयानत है।'

लूटेश्वरनाथ चाहता था कि वह राज्यकोष का धन अकेले-अकेले न हज़म करे, इसलिए वह कठोरसिंह, एवं रावणसिंह नामक दो मंत्रियों से मिला और उनको पटाने में सफल हो गया। इन मंत्रियों को लगा कि लूटेश्वरनाथ ठीक ही तो कह रहा है। राजकोष का धन हमारा ही धन है, क्योंकि हम मंत्री हैं। ऐसा सोचकर वे दोनों तैयार हो गए। इसका सफल यह हुआ कि तीनों मंत्रियों का परिवार धन-धन्य से परिपूर्ण होने लगा।

कोई भी ज़रूरतमंद जब इन चालाक मंत्रियों के पास पहुँचता, तो वे फौरन रोनी सूरत बनाकर बोलते, 'क्या करें भाई, अभी ख़ज़ाना ख़ाली है, वरना हम तुम्हारी सहायता कर देते। हें...हें...हम तो बैठे ही हैं जनसेवा के लिए..।'

लोग उदास होकर लौट जाते, लेकिन उन लोगों के जाने के बाद ये मंत्री गरीब लोगों के नाम से ही कुछ मुद्राएँ निकालकर अपने रिश्तेदारों तक पहुँचा देते। कभी-कभी अपने दूर के रिश्तेदारों के नाम से भी मुद्राएँ हड़प लेते थे।

बहुत दिन तक यह खेल चलता रहा। लेकिन एक दिन राज्य की एक सार्वजनिक दीवार पर किसी जागरूक नागरिक ने एक रात चुपचाप इन मंत्रियों के कारनामों की पूरी जानकारी लिखकर सत्य का खुलासा कर दिया। बस क्या था, राजा तक सूचना पहुँच गई और अभूतपूर्व कारनामे करनेवाले सारे मंत्री भूतपूर्व हो गए।'

इतनी कहानी सुनने के बाद बैताल ज़ोर से हँसा। फिर बोला, 'राजन, कहानी अभी ख़त्म नहीं हुई है। समाप्त होने के कगार पर है। अब तुम मुझे बिल्कुल ठीक-ठीक यह बताओ कि उन शातिर मंत्रियों का क्या हुआ। राजा दयाशरण को जब असलियत पता चली तो उन्होंने इन मंत्रियों के साथ कैसा व्यवहार किया?'

विक्रमार्क बिना किसी देरी के बोल उठा, 'मेरे राज्य के ऐसे अपराधी मंत्रियों को मैं फाँसी पर ही लटका देता। खैर। इस कहानी का अंत यह है कि सिधवागढ़ के राजा ने मंत्रियों को अपने पास बुलाया और उन्हें बहुत फटकार लगाई। फिर सुरक्षाकर्मियों को आदेश दिया कि इन भ्रष्टाचारियों की ज़ोरदार पिटाई करो।

पिटाई के बाद मंत्रियों को अमानत में ख़यानत करने के अपराध में जेल में डाल दिया। इन मंत्रियों के प्रभार को तीन ईमानदार मंत्रियों को सौंप दिया और चेताया भी कि 'अगर अब कोई शिकायत मिली, तो सज़ा-ए-मौत दी जाएगी।' राजा के इस न्याय पर गरीब जनता खुश हुई।'

विक्रमार्क ने बिल्कुल सही अंत बताया था।

मगर राजा का मौन भंग हो चुका था, इसलिए शर्त के अनुसार बैताल छू-मंतर हो गया और जाकर डाल पर लटक गया।

जी-31 **नया पंचशील नगर**
रायपुर 492001
मो॰ 09425212720
ई-मेल-girishpankaj1@gmail.com

('आधुनिक बैताल कथाएँ' व्यंग्य-संग्रह से)

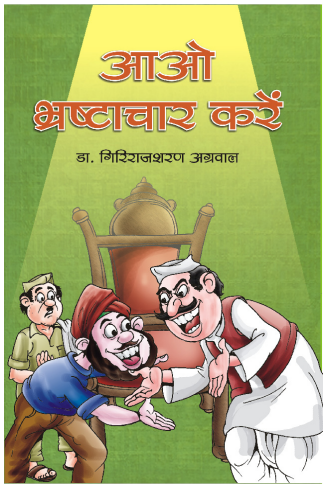

कहानी

सरहदों से दूर

सुरेशचंद्र शुक्ल

'तुम भी दुश्मनों की भाषा बोलने लगी हो। जो देश ईराक पर कब्जा करने का ख्वाब देखते हैं, वे भी प्रजातंत्र और मानवाधिकार की बात करते हैं। और तुम भी वहीं बात करती हो।' हामिद ने लैला की ओर आश्चर्य से देखते हुए कहा।

उत्तरी इराक पर बसे नगर की सुंदर पहाड़ियों पर बस छोटा-सा स्कूल। दिखने में साधारण किंतु खुर्द संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्कूल। खतना हो या सगाई, बसंत हो या ईद-बकरीद, सभी पर्व यहाँ धूमधाम से मनाए जाते हैं। लैला इसी स्कूल में सरकारी लोगों, सिपाहियों से छिपकर खुर्द पढ़ाती है। खुर्द भाषा स्कूलों में पढ़ाने की यहाँ इज़ाजत नहीं है।

नन्हे-नन्हे टर्की के बने कपों में तेज़ कॉफ़ी और सिगरेट-बीड़ी पीने का आनंद ले रहे बुज़ुर्ग। महिलाएँ भी सिगरेट और कॉफ़ी का आनंद लेते हुए एक घेरे के चारों ओर बिछी हुई इरानी क़ालीन पर बैठी हुई हैं।

आज यहाँ रंगबिरंगे वस्त्रों में बाल युवा लोकनृत्य कर रहे थे। हाथ में रंगबिरंगे रूमाल को हवा में ऐसे लहलहा रहे थे, मानो खेतों में पीली सरसों लहलहा रही हो। सभी बालिकाओं और युवतियों के हाथों पर बँधे रूमालों, सर पर बँधी चुनरियों, ऊपर चोलियाँ, नीचे घाघरे और लहँगों सी पोषाकें। सौंदर्य से क्या पर्दा। मानो एक साथ अनेक चाँद इन पहाड़ियों पर उतर आए हों। आज 18 वर्षीय लैला की उसके पिता के उम्र के रिश्ते में चाचा मुंशी अमीन के साथ सगाई है। कल विवाह होगा।

लोग इस उत्सव में बढ़-चढ़कर भाग ले रहे हैं। मुंशी अमीन ने पानी की तरह पैसा बहाया है। कोई कानाफूसी करता कि उसने लैला के घरवालों का सारा क़र्ज़ माफ़ कर दिया है। कोई कहता चढ़ी जवानी बुड्ढे को। लैला की इच्छा के विरुद्ध वह विवाह हो रहा है। वह अपनी सहेली जुबैदा के कंधों पर सर रखकर सिसक रही है। वह जुबैदा से पूछती है, 'क्या हमारा इतना भी हक नहीं कि हम अपनी मरजी से शादी कर सकें। वाहिद में क्या खराबी है?' 'औरतों से कौन पूछता है उनकी मरजी, लैला। हामिद खुर्द नहीं है।' कहकर जुबैदा ने लैला की चुनरी सँभाली और उसका सर ढक दिया।

'कौन कहता है मुस्लिम समाज में जात-पाँत नहीं है। हम अपने फ़ायदे के लिए कब तक दोहरा चरित्र अपनाते रहेंगे। क्या मुंशी का दीन-ईमान नहीं है?' लैला हिचकियाँ लेते हुए बोली।

'बूढ़े अमीन का नाम मत लो लैला, उसके नाम से मुझे चिढ़ होती है। किसी तरह उस खूसट बुड्ढे से तुम्हारा पीछा छूट जाए उसके लिए मैं जान की बाजी भी लगा सकती हूँ।' जुबैदा अपनी सखी का भविष्य जीते जी नष्ट होते नहीं देख सकती थी। तभी सेना की गाड़ी आती है। नाच-गाना बंद हो जाता है। हवा में गोलियों के चलने की आवाज़ आती है तभी दो नकाबपोश सैनिक पास आते हैं और लैला को पकड़कर ले जाते हैं। हंगामा मच गया। जुबैदा चीख़ती है। लैला जाते-जाते जुबैदा को सांत्वना देते हुए और सैनिकों का विरोध करते हुए कहती है, 'मत परेशान हो जुबैदा, मैं कुआँ छोड़कर खाई में जा रही हूँ।' लोग विरोध करने आगे बढ़े, परंतु उनमें मशीनगनों से मक़ाबला करने की हिम्मत नहीं थी। उन सैनिकों में एक लैला के प्रेमी वाहिद हमीदी का मित्र सलीम था, जिसे उसके भाई ने पहचान लिया था। सैनिक लैला को गाड़ी में ले गए। सैनिक गाड़ी को देखते हुए तब तक लोग चीखते-चिल्लाते रहे, जब तक वह ओझल नहीं हो गई। जुबैदा ने गहरी साँस लेते हुए ईश्वर को धन्यवाद दिया, 'तेरा लाख-लाख शुक्र है अल्लाह, जो लैला को उसके मर्द से मिला दिया।'

लैला ने जब सैनिक गाड़ी में अपने प्रेमी वाहिद हमीदी को देखा तो उसके नयनों से आँसू बह निकले थे।

लैला और वाहिद गले लग गए थे। उपस्थित सैनिक हँस पड़े थे। एक सैनिक ने कहा, 'वाहिद तेरी तो चाँदी है। हम तो ख़ानाबदोश की ज़िंदगी बसर कर रहे हैं। कभी कहीं भेज दिए जाते हैं, कभी कहीं। उसका दूसरे सैनिक साथी ने कहा, 'अब तुम हैडक्वार्टर बगदाद चले जाओ।'

इराक में हुक्मरानों की तानाशाही से जनता परेशान हो गई थी। पड़ोसी देशों से भी संबंध अच्छे नहीं थे। आतंकवादी और रूढ़िवादी शक्तियों के प्रभाव से दिन पर दिन समाज में वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। आएदिन दंगा-फ़साद। पटाकों की तरह बम फटते। पिछले बारह-तेरह वर्षों में न जाने कितने बेगुनाहों की जानें गईं। बाहरी देशों ने इस देश से संबंध भी तोड़ दिए, फिर भी हुक्मरान का राजपाट छोड़ने का कोई इरादा नहीं था। पता नहीं क्यों आजकल के अधिकांश नेता केवल अपना फ़ायदा देखते हैं। चाहे जनता भाड़ में जाए। जनता कब तक माफ़ करेगी। घूर के दिन भी बहुरते हैं। जिस सिपाही को देखकर सुरक्षा और शांति का अनुभव होना चाहिए, उसके स्थान पर उल्टे असुरक्षा और अशांति बढ़ रही थी। क्या पुलिस केवल हुक्मरानों की देखभाल और उनके इशारे पर चलने के लिए बनी है।

लैला बगदाद चली आई थी। सैनिक छावनी के पास ही एक कमरे के घर पर रहने लगी थी। समय व्यतीत होते देर न लगी। देखते-देखते बहुत कुछ बदल गया। उसका सात महीने का एक पुत्र है। पर शांति नहीं। आए-दिन कर्फ़्यू लगा रहता है। रात में चारों तरफ़ अँधेरा ही अँधेरा। न जाने कब बाहरी ताकतें हमला कर दें। लैला ने वाहिद को बहुत समझाया कि सेना छोड़कर कहीं दूर भाग चलें, 'वाहिद देखो हम अपने लिए न सही अपने बच्चे के लिए यहाँ से कहीं दूर जाकर अपना बसेरा बनाएँ। जहाँ हम हों, तुम हो, मेरा प्यारा-सा सलोना हो। जहाँ न युद्ध हो, न अशांति।'

'नहीं लैला, मैं अपना मुल्क छोड़कर नहीं जा सकता।'

'जहाँ रहने लगो, वही मुल्क हो जाता है। फिर सेना में रहकर शांति कहाँ है, वाहिद?

'मैं मुल्क नहीं बदल सकता।'

'अगर एक तरफ़ मैं हूँ, जो तुम्हारे लिए सब-कुछ छोड़कर आई हूँ। तब भी नहीं। क्या अपने बेटे के लिए भी नहीं? कहकर लैला गंभीर हो गई थी।

'अन्यथा नहीं लेना, लैला। आदमी चार विवाह कर सकता है। अतः मुझे नई औरत भी मिल जाएगी। पर अपने मुल्क की सेवा का मौक़ा एक बार मिला है।'

वाहिद का जवाब सुनकर लैला सकते में आ गई। वह कुछ देर स्तब्ध रही। मौन तोड़ते हुए लैला ने कहा, 'वाहिद! क्या तुम समझते हो कि मैं इराक़ से प्यार नहीं करती। शायद मैं अपना देशप्रेम तुमसे ज़्यादा अच्छी तरह प्रदर्शित नहीं कर सकती, क्योंकि मैं सैनिक नहीं हूँ। पर इंसानियत में किसी से कम नहीं। इराक को मैं ऐसे देश के रूप में देखना चाहती हूँ, जहाँ सभी को न्याय मिले। औरत और आदमी में कोई फ़र्क़ न हो। सभी संस्कृति और धर्मों के लोगों को इज़्ज़त से रहने की आज़ादी हो। यहाँ प्रजातंत्र हो।'

'तुम भी दुश्मनों की भाषा बोलने लगी हो। जो देश इराक़ पर कब्ज़ा करने का ख़्वाब देखते हैं, वे भी प्रजातंत्र और मानवाधिकार की बात करते हैं। और तुम भी वही बात करती हो।' हामिद ने लैला की ओर आश्चर्य से देखते हुए कहा।

'हाँ, वाहिद, प्रजातंत्र में बुराई क्या है? दूसरे की आज़ादी छीनने का किसी को क्या हक़ है? यह देश जितना तुम्हारा है, उतना हमारा भी....(गहरी साँस भरते हुए) याद है वाहिद कल तुम पूछ रहे थे कि मेरा सर क्यों चकरा रहा है? मैंने तुमसे कहा था यों ही। सच जानना चाहते हो, तो सुनो। मैं कल रेडक्रास के कैंप में अपना खून देने गई थी। और जानते हो मैंने क्या फ़ैसला लिया है? मैं रेडक्राम में नर्सों के साथ काम करूँगी।

'तुम पढ़ी-लिखी होकर भी ऐसी बातें करती हो, लैला! अपने छोटे बच्चे रशीद को कैसे पालोगी? लैला!'

'उसे भी साथ रख लूँगी। मैंने इंतज़ाम कर लिया है।'

'औरत की जगह घर पर होती है लैला।'

'मैं नहीं मानती, पुरानी मान्यताएँ हैं।' जानते हो वाहिद और माँ अपने बच्चों की पहली गुरु होती है। जब माँ अनपढ़ रहेगी, तब बच्चे को कैसे अच्छी शिक्षा दे सकती है? जानते हो मेरी माँ ने अब्बाजान से छिप-छिपकर पढ़ाई की थी। यदि अम्मी न पढ़ी होतीं तो मुझे कैसे पढ़ातीं।'

'तुम्हारी जो मर्जी है करो, लैला। मैं कल बसरा जा रहा हूँ। दुश्मन मुल्क़ इराक़ पर कब्ज़ा करना चाहते हैं। ये आज रात हमला करना चाहते हैं। मैं अपनी बटालियन के साथ बसरा जा रहा हूँ।'

अपना ख़्याल रखना चाहिए। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें? कह कर वह हामिद को अपनी बाँहों में भर लेती है।

वाहिद अपनी मशीनगन उठाता है और अपने बेटे को चूमता है। लैला तब तक द्वार पर खड़े हाथ हिलाती रही, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया।

अचानक एक ज़ोरदार धमाके के साथ द्वार के टूटने की आवाज़ से लैला की नींद खुल गई। दूध पीते बच्चे को अपने वक्षस्थल से हटाकर बिस्तर पर चीख़ने छोड़ दिया था। लैला स्वयं चीख़ना चाहती थी, पर वह जानती थी उसे बचाने वाला कोई नहीं है। वह डरी-सहमी रात के अँधेरे में टटोलती हुई पर्दे के पीछे छिप गई थी। उसका बच्चा दूध पीने में इतना तल्लीन था कि उसने धमाके की ध्वनि को अनदेखा कर दिया। वह अपने सीने के दर्द से टीस उठी और उसे मसलते हुए चुनरी से ढक लिया था। आज उसका बच्चा तनिक भी नहीं रोया जैसे वह अपनी माँ की पीड़ा समझ गया हो।

एक सैनिक खुर्दी भाषा में बोला था, 'यही हरामजादे वाहिद हमीदी का घर है।'

'हाँ अहमदी, तलाशी लो, वह यहीं कहीं छिपा होगा।' दूसरा आदमी हाथ में टॉर्च लिए बोला। अँधेरे में लंबी टॉर्च की रोशनी में बच्चे की आँखें चमक रहीं थीं। अहमदी आगे बढ़ा और वह बच्चे को उठाने ही वाला था कि लैला ने चुपचाप आगे बढ़कर सिपाही के हाथ से झपटकर पिस्तौल छीन ली और सिपाही की ओर पिस्तौल की नली का मुख करते हुए ऊँची आवाज़ में खुर्दी भाषा में बोली, 'ख़बरदार जो मेरे बच्चे को छुआ। एक-एक की जान ले लूँगी।' लैला की आँखों में शेरनी जैसा क्रोध दिखाई दे रहा था।

एक सिपाही ने स्वचालित लालटेन जला दी थी। उसका अस्त-व्यस्त कमरा रोशनी से भर गया था। अचानक रोशनी बंद हो गई और एक सिपाही ने लैला की पिस्तौल छीनकर उसके दोनों हाथ पीछे बाँध दिए। स्वचालित लालटेन से रोशनी पुनः जगमगा उठी। लैला की चुनरी नीचे गिर गई थी, उसके शरीर का ऊपरी हिस्सा निर्वस्त्र हो गया था सामने अपने भाई अलादीन को देखकर लैला काँप गई थी। मानो उसपर बिजली गिर गई हो।

आज पुरानी यादें ताज़ा हो गईं। उसे भली-भाँति स्मरण हो आया, जब उसके परिवार की आर्थिक दशा अच्छी न थी। खुर्दिशों से उन्हीं के देश में दोहरे नागरिक सा व्यवहार किया जाता था। भाषा को भी मान्यता न थी। उसके देश पर लगे अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों से अमीरों की चाँदी और आम आदमी को दो जून अनाज के लाले पड़ गए थे।

लैला के मस्तिष्क में अपनी आपबीती स्मरण हो आई। जिस स्कूल में वह पढ़ाती थी, वहाँ उसका भाई और पिता उसका विवाह एक बहुत धनी बूढ़े मुंशी अमीन

से करवाना चाहते थे, जिसके पहले तीन विवाह हो चुके थे। तब लैला को ज़बरदस्ती राज़ी करने के लिए उसे तीन दिनों तक एक कमरे में बंद रहना पड़ा था। तीन दिनों तक उसे कुछ मेवे खाकर और पानी पीकर गुज़ारा करना पड़ा था।

लैला अवसर पाकर घर से भागकर जब अपने इराकी प्रेमी वाहिद हमीदी के साथ विवाह रचाने मस्ज़िद में मौलवी के समक्ष उपस्थित हुई थी, तब मौलवी ने उसे इंतज़ार करने को कहा और अपना आदमी भेजकर लैला के घरवालों को बुलवा भेजा। लैला अपने प्रेमी के साथ विवाह का सुनहरा स्वप्न देख रही थी। मस्जिद की दीवारों से बाहर उसकी दृष्टि पड़ी। उत्तरी इराक का यह पहाड़ी इलाका बहुत ख़ूबसूरत लग रहा था। पास ही कुछ औरतों के खुर्द भाषा में मंगलगीत गाने की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। आसमान साफ़ था। एक चील एक नन्हे पक्षी को अपनी रक्त से लथपथ चोंच से दबाए पास से होकर उड़ रहा था। लैला का मन भर आया। काश, यह उड़ सकती तो अवश्य ही पक्षी को चील से मुक्त कराती।

दूर से ही लैला के भाई के हाथों में बंदूक देखकर वाहिद हमीदी भाग गया था। लैला को पकड़ लिया गया। खुले-आम लैला के चचेरे भाई ने उसकी इज़्ज़त लूटी। जनता मूक खड़ी तमाशा देख रही थी। भाई बहन से राखी बँधवाता है। भाई बहन के जीवन की रक्षा का वचन देता है। महाभारत की द्रोपदी को बचानेवाले कृष्ण भाई थे और यहाँ लैला की इज़्ज़त भरे बाज़ार में उसके भाई अलादीन ने लूट ली थी। भाई के हाथों एक बार फिर चीरहरण हो गया। उसके भाई का कहना था उसने यह घृणित कार्य अपने परिवार के मान-सम्मान के लिए किया था। क्योंकि उसके खुर्द परिवार में किसी ने अपने दुश्मन सैनिक से विवाह नहीं रचाया था।

बाहरी सेनाओं में जब युद्ध का बिगुल बजाया तो खुर्द लोग भी बाहरी सेनाओं के साथ हो लिए थे। अलादीन अभी भी अपनी बहन और उसके पति से बदला लेना चाहता था। खोजते हुए वह वहाँ आ धमका था।

बख़्तरबंद गाड़ियों का शोर। बम फटने और गोलियों के चलने की कानफोड़ ध्वनियों के साथ-साथ सायरन बज रहे थे। बारूद की गंध के साथ चहुँओर धुआँ उठ रहा था।

लैला ऊपरी शरीर में निर्वस्त्र खड़ी थी। हाथ पीछे बँध जाने से नि:सहाय हो गई थी। लैला किसको याद करे, किससे सहायता माँगे, जब अपना भाई ही दुश्मन हो गया है। यह कैसी दुनिया है, जहाँ इंसानियत को बचाने वाला कोई नहीं।

अचानक अनेक विदेशी फ़ौजियों ने लैला के छोटे से कमरे में प्रवेश लैला को निर्वस्त्र देख एक सैनिक अधिकारी चिल्लाता है, 'शेम...शेम' (शर्म-शर्म) वह आगे बढ़कर लैला के हाथ खोलता है। वह अपनी चुनरी लेती है। सैनिक अधिकारी उसे अपने बच्चे के साथ बाहर शरणार्थियों के लिए खड़ी अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस की गाड़ी पर बैठने को कहता है। लैला का भाई हक्का-बक्का रह जाता है। अधिकारी का विरोध करने की सामर्थ्य नहीं है उसमें।

लैला अपने बच्चे और उसके कपड़े लेकर बाहर गाड़ी में बैठ गई। अपने ही देश में लैला शरणार्थी बन गई। पता नहीं कहाँ और किस दशा में, किस देश में उसे भेजा जाएगा, वह समय ही जाने। वह भी लाखों इंसानों की तरह बेघर और बिना देश की नागरिक हो गई है। सरहदों पर लैला को विश्वास नहीं रहा।

लैला मन ही मन बुदबुदाई, 'काश, देश ऐसा होता, जहाँ सरहदें इंसानियत की क़द्र करतीं, जहाँ इंसान जाँत-पाँत की सरहदों से दूर, धर्म के पाखंडों की सरहदों से दूर होता, जहाँ मानवता का साम्राज्य होता, कोई अबला कभी न लुटती।'

यह सरहदों से दूर जाना चाहती है, मानवता के देश में।

Grevlingveien 2 G, 0595 Oslo, Norway;
ई-मेल-speil.nett @gmail.com,
suresh@shukla.no; http://
sureshshukla.blogspot.no

('सरहदों के पार' कहानी-संग्रह से)

कुत्ते वाले
पापा
कहानी-संग्रह

डॉ॰ मीना अग्रवाल

मूल्य :
150 रुपए

हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर

कहानी

सूरज क्यों निकलता है

सुधा ओम ढींगरा

दोनों ढीठ हो चुके हैं, गालियाँ सुनकर चेहरा भाव-हीन ही रहता है और दोनों ऐसा अभिनय करते हैं कि जैसे उन्होंने कुछ सुना नहीं। गत्ते का टुकड़ा हाथ में थामे सूखे होठों पर जीभ फेरते और थूक से गला तर करने की कोशिश करते हुए, वे एक कार को छोड़, दूसरी की ओर चल पड़ते हैं।

वे गत्ते का एक बड़ा-सा टुकड़ा हाथ में लिए कड़कती धूप में बैठ गए, जहाँ कारें थोड़ी देर के लिए रुककर आगे बढ़ जाती हैं। बिना नहाए-धोए, मैले-कुचैले कपड़ों में वे दयनीय शक्ल बनाए, गत्ते के टुकड़े को थामे हुए हैं, जिस पर लिखा है–'होमलैस, नीड यौर हैल्प।' कारें आगे बढ़ती जा रही हैं, उनकी तरफ़ कोई ध्यान नहीं दे रहा।

सैकड़ों कारों में से सिर्फ़ दस-बारह कारों वाले, कारों का शीशा नीचे करके उनकी तरफ़ कुछ डॉलर फेंकते हैं और फिर स्पीड बढ़ाकर चले जाते हैं। दोनों आँखों से ही डॉलर गिनते हैं, एक-दूसरे को देखते हैं और न में सिर हिला देते हैं।

अब वे सड़क के नए कोने पर खड़े हो गए हैं, जहाँ गंतव्य स्थान पर मुड़ने के लिए एग्जिट के कोने पर रुकने का चिह्न है यानी स्टॉप साइन।

ज्यों ही कारें रुकती हैं, वे गत्ते के टुकड़े को उनके सामने कर देते हैं, कुछ लोगों ने उन्हें गाली दी–'बास्टर्ड, यू आर बर्डन ऑन द सोसाइटी।'

कुछ ने अपनी कार का शीशा नीचे करके कहा–'वाए यू गाईस डोंट वर्क?'

दोनों ढीठ हो चुके हैं, गालियाँ सुनकर चेहरा भाव-हीन ही रहता है और दोनों ऐसा अभिनय करते हैं कि जैसे उन्होंने कुछ सुना नहीं। गत्ते का टुकड़ा हाथ में थामे सूखे होठों पर जीभ फेरते और थूक से गला तर करने की कोशिश करते हुए, वे एक कार को छोड़, दूसरी की ओर चल पड़ते हैं।

कई दिनों से उनके गले सूखे हुए हैं, शराब की एक बूँद उन्हें नसीब नहीं हुई। पूरे बदन में बहुत तनाव है, उसे तनाव रहित करने के साधन नहीं जुटा पाए वे। जेब में वैलफेयर में मिले भोजन के कूपनों के अतिरिक्त एक डॉलर भी उनके पास नहीं है। ये कूपन सरकार उन्हें खाने की सामग्री ख़रीदने के लिए देती है। कूपन बेचकर वे शराब की बोतल और सिगरेट का पैक ख़रीदना चाहते हैं, पर कोई ख़रीददार नहीं मिल रहा उन्हें। दोनों निराश हैं, परेशान हैं, हलक पानी से बहल नहीं रहा। उसे बीयर चाहिए, व्हिस्की चाहिए। ये सब वे कहाँ से लाएँ? हारकर आज उन्होंने अपना पुराना धंधा अपनाया, इससे कई बार अच्छी कमाई हो जाती है। यह कमाई एक रात का पूर्ण सुख दे जाती है। वह रात अगले कुछ महीनों के लिए उन्हें काफ़ी तुष्ट कर जाती है।

शाम ढलने से पहले ही उन्होंने अपनी कमाई को गिना, अभी भी मन चाही रक़म पूरी नहीं हुई। दोनों बेहद थक गए हैं। पसीने से भीग गए हैं और उन्हें शाम से पहले ही शैल्टर होम में लौटना है। वे पास के बस स्टॉप की ओर चल पड़े। दोनों चुप हैं, कुछ बोल नहीं रहे। डाउन टाउन राले की बस आती देख, वे भागकर उसमें चढ़ गए। यह बस बेघर लोगों की रसोई (सूप किचन) के पास जाकर रुकती है, वहीं मुफ़्त में खाना खाकर वे साथ ही के शैल्टर होम में सोने जाने की सोच रहे हैं। कई दिनों से वे यही कर रहे हैं, इस तरह वे अपने कूपन बचा रहे हैं। उन्हें बेचकर वे ज़्यादा-से-ज़्यादा पैसा बनाना चाहते हैं।

बस में बैठते ही पहली बार पीटर ने मुँह खोला–'भाई, मंदी ने अमेरिका के लोगों को सचमुच मार डाला है। मुझे उन पर तरस आ रहा है। उनके पास हम जैसे बेघर लोगों को देने के लिए डॉलर ही नहीं हैं।'

सिर खुजाते हुए जेम्स ने कहा–'यार, पैसे के साथ-साथ लोगों के दिल भी छोटे हो गए हैं। इंसानियत तो रही नहीं। चिलचिलाती धूप में बैठे भीख माँगते रहे। किसी को दया नहीं आई। पहले काफ़ी पैसे मिल जाते

थे।'

उस बस में अधिकतर बेरोज़गार, बेकार, बेघर पिछले स्टॉप से ही बैठे हुए थे, वे सब सिर हिलाकर जेम्स का साथ देने लगे–'हाँ-हाँ, बहुत ग़लत है यह। लोगों को देखना चाहिए, कितनी कड़ी मेहनत करते हैं हम।'

'हमारी स्थिति कोई समझता नहीं। आज दो जगह काम माँगने गया था, काम मिला नहीं। पिछले दो सालों से यही हो रहा है। बस में चढ़ने के लिए भी पैसे चाहिए। कहाँ से पैसा लाऊँ?' बस में बैठा माइक रोष में बोला।

'सरकार को कुछ करना चाहिए, हम-जैसे बेरोज़गार, बेघर लोगों के लिए नि:शुल्क बसें चलानी चाहिए।' जेम्स बोला।

'अरे सरकार कुछ नहीं करेगी, यू॰एस॰ए॰ की इकॉनोमी का बुरा हाल है। देखते नहीं, लोगों के पास हम ग़रीबों को देने के लिए पैसे नहीं।' पीटर बोला।

बातें करते-करते डाउन टाउन राले के शैल्टर होम के केंद्रीय ऑफ़िस का बस स्टॉप आ गया, सब लोग यहीं उतर गए। रसोई इसी ऑफ़िस में है।

शाम होते ही सूप किचन में होमलैस लोग भोजन के लिए इकट्ठे होने शुरू हो जाते हैं, बाद में ये लोग सोने के लिए किसी-न-किसी शैल्टर होम में जगह पा लेते हैं। इस रसोईघर में शहर के कुछ रैस्टोरेंट अपना बचा हुआ खाना और बहुत से ग्रौसरी स्टोर्स अपनी सब्ज़ियाँ भेजते हैं। स्कूलों में बच्चों को इनकी मदद करना सिखाया जाता है और वे केन फूड इकट्ठा करके यहाँ भेजते हैं। निश्चित समय पर यहाँ लंच और डिनर दिया जाता है। इसलिए सब होमलैस समय पर यहाँ खाना खाने पहुँच जाते हैं। इस रसोई में अक्सर कोई-न-कोई समाजसेवी संस्था के स्वयंसेवी खाना दे जाते हैं, कई बार वे उसी रसोई में खाना बनाकर इन लोगों को खिलाते हैं। भारतीय मूल के लोग तो उत्सवों और बच्चों के जन्मदिन पर यहाँ स्वादिष्ट व्यंजन दे जाते हैं।

आज रात्रि के भोजन में स्थानीय संस्था के स्वयंसेवकों ने अमरीकी व्यंजन परोसे–एंजला ने मुँह बनाया–'नो टेस्ट।' पीटर ने फिर कहा–'अमरीका ग़रीब हो रहा है। सरकार को कुछ करना चाहिए। मंदी ने खाना भी बेकार कर दिया।' आस-पास बैठे सभी होमेलैस बोले–'तुम बिल्कुल सही कह रहे हो दोस्त, बिल्कुल सही।' स्वयंसेवी चुपचाप खाना परोसते रहे।

मुफ़्त में खाना खाकर जेम्स और पीटर ने अपनी फूड स्टैम्प्स यानी कूपन फिर बचा लिए। अमरीकी सरकार सोचती है कि ग़रीबीरेखा से नीचे के लोगों को फूड स्टैम्प्स देकर वह उनका भला कर रही है, इससे वे भूखे नहीं रहेंगे और खाना ही खाएँगे, अगर पैसा देंगे तो शराब व सिगरेट ख़रीद लेंगे, पर निकालनेवाले तो यहाँ भी रास्ता निकाल लेते हैं। खाना खाने के बाद वे सोने के लिए शैल्टर होम की ओर चल पड़े।

शैल्टर होम के सामने एक लंबी लाइन लगी है। उसमें तरह-तरह के लोग खड़े हैं। कई दिनों से, नहाए हुए नहीं हैं, गंदे, कुछ नशेड़ी, कुछ सचमुच में समय के हाथों पिटे हुए, कई जो जीवन में काम नहीं करना चाहते, बस सरकारी सेवा का जी-भरकर आंनद लेना चाहते हैं, पीटर और जेम्स की तरह। अधिकतर ये लोग उन्मुक्त, बेपरवाह, जीवन की चुनौतियों से परे अपनी दुनिया में डूबे रहते हैं। उदासी, घुटन और बदबू वातावरण में समाई हुई है। पंक्ति में खड़े यूजीन ने अपने अगलेवाले साथी को धीरे से बताया–'ब्रदर, हाईवे 40 के पास हैरिटेज इन मोटलवाले आधी क़ीमत पर कूपन ले रहे हैं।' उन दोनों ने सुन लिया। एक-दूसरे की ओर देखा। दोनों की आँखों में चमक आ गई। बिना बोले वे एक-दूसरे की बात समझ गए। लाइन को छोड़कर वे भाग गए।

आज का दिन अच्छा है उनके लिए, हैरिटेज इन मोटल के पास वाले बस स्टॉप पर रुकनेवाली बस आकर सूप किचन के सामने रुक ही रही थी। वे जल्दी से उसमें चढ़ गए। कुछ घंटों के बाद होने वाले सुखद अनुभवों की कल्पना से ही उनके रूखे-सूखे चेहरों पर रौनक आ गई। वे हैरिटेज इन मोटल में गए और अपने कूपन आधे में बेच दिए। कई मोटल वालेफूड स्टैम्प्स आधी क़ीमत पर लेकर, अपने मोटल के लिए खाद्य-सामग्री ख़रीद लेते हैं। उससे उन्हें काफ़ी बचत हो जाती है।

पैसे गिनते हुए जेम्स ने कहा–'भाई, महँगाई बहुत हो गई है, सस्ती-से-सस्ती लड़की भी पचास डॉलर से कम में साथ नहीं चलती, अभी और डॉलर चाहिए।'

'नहीं, आज हमें इसी से काम चलाना है, अब और इंतज़ार नहीं होता।' पीटर बेचैन-सा होता हुआ बोला।

मोटल के बाहर से ही उन्होंने फिर डाउन टाउन राले वाली बस अपने पुश्तैनी घर जाने के लिए पकड़ी। यह घर उनके नाना-नानी का है, जिसमें वे जन्मे-पले हैं और अब वह ख़स्ता हालत में है, किसी के पास उसे ठीक करवाने के लिए पैसे नहीं। इस घर में उनकी दो बहनें अपने बच्चों के साथ रहती हैं और बाकी के भाई कभी-कभी इस घर में थोड़ी देर के लिए रुक लेते हैं, पर रहता कोई नहीं, हाँ, वे दोनों, अक्सर आते हैं, उनका

कुछ सामान पड़ा रहता है यहाँ। माँ तो कई साल पहले इस दुनिया से चली गई।

टैरी नाम की महिला उनकी माँ थी। उसके लिए माँ शब्द सही नहीं, उसे माँ कहना उचित भी नहीं, यूँ कह सकते हैं कि वह बच्चे पैदा करने वाली मशीन थी। माँ क्या होती है, बच्चों को पता नहीं और ममता क्या होती है, टैरी को पता नहीं। बस उसने तो बच्चों को जन्म दिया, ग़रीबीरेखा से नीचे वालों की सरकारी सहायता वैल्फेयर लेने के लिए। हर बच्चे के बाद नए बच्चे के पालन-पोषण हेतु वैल्फेयर से उसे और पैसा मिल जाता था।

उसकी माँ अक्सर ग़ुस्सा होती–'टैरी, तुम अब और ख़ाली नहीं बैठोगी, कुछ काम धंधा करो, नहीं तो मैं घर से निकाल दूँगी। हर साल पेट में बच्चा डाल लेती हो। तुझे तो यह भी पता नहीं कि किसका बाप कौन है।'

टैरी माँ के गले में बाँहें डालकर कहती–'माँ, तुम मुझे घर से नहीं निकाल सकतीं, मैं तुम्हारी अकेली संतान हूँ और तुम्हारा वंश बढ़ा रही हूँ। क्या तुम ग्रैंड चिल्ड्रन नहीं चाहतीं।'

'टैरी, मुझे नाती-नातियाँ पसंद हैं। पर तुम कोई काम तो करो। बच्चे हम पालते हैं और तुम सारा दिन पुरुष मित्रों के साथ सिगरेट फूँकती हो और शराब में मस्त रहती हो। रात को तुझे क्लबों से फ़ुर्सत नहीं मिलती। तुझे पता भी है कि बच्चे कैसे पल रहे हैं? बहुत कामचोर हो गई है। तेरी हड्डियों में आराम बस गया है। ऐसे कैसे चलेगा?' माँ झगड़ा करती।

'चलेगा माँ, चलेगा, देखती रहो। मुझे पता है, बच्चे अच्छे पल रहे हैं, तुम लोग अच्छे नाना-नानी हो।' वह हँसकर कहती–'वैसे मैं काम क्यों करूँ? हमारे बज़ुर्गों ने वर्षों इन लोगों की ग़ुलामी की है, अब सरकार का फ़र्ज बनता है कि हमारा ध्यान रखे।'

उसने सरकार से अपना ध्यान रखवा लिया और ग्याहरवें बच्चे तक वह आर्थिक रूप से सुरक्षित हो गई। उसके माँ-बाप कुछ बच्चों तक तो ख़ूब लड़ते रहे। फिर उन्होंने भी परिस्थितियों के साथ समझौता कर लिया। आर्थिक सुदृढ़ता ने उन्हें चुप करवा दिया। वैल्फेयर के अनुसार पैसा बच्चे के अठारह वर्ष के होने तक दिया जाता है और ऐसे में बच्चों को स्कूल भेजना ज़रूरी होता है। उसने उन्हें स्कूल भेजा, पर वे पढ़ते हैं या नहीं, यह जानना कभी ज़रूरी नहीं समझा। हाई स्कूल किसी ने पास नहीं किया और अठारह वर्ष के होते ही, वे बिना कुछ सीखे स्कूल छोड़ गए।

माँ के स्वभाव, रहन-सहन और आदतों का परिणाम यह निकला कि बेटियाँ माँ के ही नक़्शे-क़दमों पर चलती हुई रोज़ पुरुष बदलती हैं और तीन-तीन बच्चों की अविवाहिता माँएँ बनकर सरकारी भत्ता ले रही हैं। दो बेटे नशा बेचनेवाले गिरोह में शामिल होकर न्यूयार्क चले गए, दो चोरी-डकैती में जेल में हैं, उनका जेल में आना-जाना लगा रहता है। एक बेटा किसी बिल्डर के साथ काम करता है और वह ही सही ढंग का निकला है। एक बेटे ने मैरुआना के पौधे घर के पिछवाड़े में उगा लिए थे और उसे स्कूल के बच्चों को बेचने लगा था। अमेरिका में मैरुआना ग़ैरकानूनी है, सिर्फ़ कैलिफ़ोर्निया में सरकार ने अत्यधिक पीड़ा के रोगियों के लिए, थोड़ी-सी खेती करने और कुछ स्टोरों पर बेचने की इज़ाजत दी हुई है। एफ॰बी॰आई॰ की नारकाटिक्स ब्रांच ने कई दिन उसका पीछा करके, छापा मारकर पकड़ लिया और वह भी जेल में है।

पीटर और जेम्स सबसे छोटे और जुड़वाँ हैं। दोनों में बहुत दोस्ती है, एक नंबर के पाजी हैं। किसी काम में मन नहीं लगता इनका, फ्री में खाना चाहते हैं। माँ की तरह वैल्फेयर का भरपूर फ़ायदा उठा रहे हैं। ज़रूरतें पूरी करने के लिए भीख माँग लेते हैं, पर मेहनत का कोई काम नहीं करना चाहते। बड़े भाई जॉर्ज ने उन्हें बिल्डर के पास नौकरी दिलवाई, पर वे छोड़-छाड़कर आ गए कि वहाँ बहुत कठिन काम करना पड़ता है।

'हमारे शरीर बहुत नाज़ुक हैं, ये भारी-भरकम काम नहीं कर सकते। हम भी इन शरीरों को वैसे ही रखेंगे, जैसे ये रहना चाहते हैं। कोई काम नहीं करेंगे।' बड़ी बेशर्मी से हँसते हुए दोनों ने कहा।

जॉर्ज को ग़ुस्सा आ गया–'इस घर में आप लोग काम क्यों नहीं करना चाहते, काम करने से आप सब कतराते क्यों हैं? क्या तुम लोगों के मन में दूसरों को देखकर कोई उमंग नहीं उठती। उनकी तरह जीने की चाह नहीं होती। डल-डफ़र से सारे बैठे रहते हैं, हरामी सब निकम्मे हो गए हैं, निठल्ले ख़ाली बैठकर मुफ़्त की खाने के आदी हो गए हैं। अबे सालो, मैं तुम दोनों की ज़िंदगी बदलना चाहता हूँ और तुम हो कि इस गंदगी में पड़े रहना चाहते हो।'

'जहाँ जन्मे-पले, वहाँ तुझे गंदगी लगती है, छि:-छि: बड़े ही शर्म की बात है। यह घर हमें बहुत प्यारा लगता है। तुम जो भी ज़िंदगी जीना चाहते हो, जीयो, हमें इस स्वर्ग को छोड़ने को मजबूर क्यों कर रहे हो। हमें दूसरे लोगों की तरह दो वक़्त के भोजन के लिए काम कर-करके मरना-खपना नहीं है। वह तो हमें बिना काम

किए ही मिल जाता है।' ढिठाई से मुँह बनाता हुआ जेम्स बोला था।

'कोकरोचिज तो अपने ऊपर से हटा लो, तुम्हारे बदन खेल का मैदान बने हुए हैं उनके लिए। गधो, थोड़े-बहुत हाथ-पाँव हिला लोगे, तो तुम्हारे बदन की नाज़ुकता को कुछ नहीं होगा।'

'जॉर्ज तुम परेशान क्यों होते हो। इस घर में हम सब इकट्ठे रहते हैं। न वे हमें कुछ कहते हैं न हम उन्हें।'

जॉर्ज की आवाज़ निराशा से ऊँची हो गई थी–'ठीक है, पड़े रहो इस गटर रूपी स्वर्ग में, गंदी नाली के कीड़ो, बास्टर्ड, मैं आज अभी इसी वक़्त से आप सबको और यह घर छोड़ता हूँ।' और वह चला गया, फिर कभी लौटकर नहीं आया। उसे किसी ने याद भी नहीं किया।

उस दिन के बाद पीटर और जेम्स ने कभी-कभी भीख ज़रूर माँगी, जिसे वे धंधा कहते हैं, पर बाक़ायदा कोई काम नहीं किया। वे वैल्फेयर लेने लगे, अलग-अलग शैल्टर में सोते हैं, घर में दो बहनें और छह बच्चों के साथ सोने में उन्हें असुविधा होती है, पर इस स्वर्ग का चक्कर ज़रूर लगा लेते हैं।

आज भी वे घर आए हैं।

घर में घुसते ही उन्होंने भाग-भागकर काम किया। अलमारी में से आयरिश स्प्रिंग साबुन की टिक्की निकाली, जो उन्होंने ख़ास मौक़ों के लिए सँभालकर रखी हुई है, उसे मल-मलकर उन्होंने अपने शरीर की गंदगी साफ़ की। राइट गार्ड डीओडोरेंट पूरे बदन पर स्प्रे किया। खूब रगड़-रगड़कर दाँत साफ़ किए। फिर माउथ फ्रेशनर से कुल्ला किया। बहुत दिनों बाद शेव बनाई। साफ़-सुथरे अधोवस्त्र पहने। प्रैस किए हुए कपड़े निकाले, जो उन्होंने विशेष रातों के लिए रखे हुए हैं। उन्हें पहनकर उन्होंने अपने-आपको शीशे में देखा, मूस लगाकर अपने घुँघराले बाल सैट किए। अंत में फिर ब्लैक सुएड कलोन की शीशी निकालकर उन्होंने अपनी बगलों, जाँघों और कानों के पीछे उसे लगाया। सज-धजकर तैयार होकर उन्होंने अपनी सारी चीज़ें वापिस अलमारी में रखकर ताला लगाया। केमार्ट स्टोर से क्रिसमस के दिनों में सेल पर उन्होंने ये सारी चीज़ें ख़रीदी थीं, जिन्हें वे बड़े प्यार से सँभालकर, सहेजकर ताले में रखते हैं। पर यह ताला कई बार टूटा भी है, उनकी बहनों के बच्चे ताला तोड़कर इन प्रसाधनों का प्रयोग कर चुके हैं, गाली-गलौच, लड़ाई-झगड़े के बाद नया ताला लगा दिया जाता है। चाबी लेकर वे जल्दी-जल्दी से बाहर निकले।

बाहर निकलते ही ये दोनों, सड़क पर आ गए और क्लब की तरफ़ चल पड़े। दोनों ने पैसे आधे-आधे बाँटकर, अपनी जेबों में रख लिए। राले के डाउन टाउन के जिस इलाक़े में इनका घर है, वह इस एरिया के क्लब से ज़्यादा दूर नहीं है। बहुत ही पुराना इलाक़ा है और मकान भी टूटे-फूटे हैं। कई घर थोड़े ठीक कर लिए गए हैं और कई घरों की खिड़कियों के शीशे टूट चुके हैं और उन पर लकड़ी का फट्टा लगाकर ढका गया है और कई घर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं।

क्लब के निकट जाते ही वातावरण में शराब और धुएँ का भभका उठता महसूस हुआ। कई तरह के तेज़ परफ़्यूम, क्लोन की सुगंध और तरह-तरह की शराब-सिगरेट के धुएँ की दुर्गंध मिश्रित रूप से एक घुटी-घुटी-सी गंध को चारों तरफ़ फैलाए है। दोनों को यह गंध बहुत अच्छी लगी। लंबी-लंबी साँसें लेकर, उन्होंने अपने नथुनों से फेफड़ों में उसे भरा और ख़ुश होकर उछलकर बोले–'आज हमारी रात है। आज हम जी भरकर मज़े लूटेंगे।' और क्लब की ओर बढ़ गए।

बिना पीए ही वे झूमते हुए 'पैराडाइज़' क्लब के दरवाज़े के पास चले गए, सिक्योरटी वाले ने दरवाज़ा खोला और उन्हें अंदर जाने दिया। क्लबों में यह सबसे सस्ती और घटिया क्लब है और बार, रेस्तराँ और क्लब तीनों का काम करती है। कम आमदनी वाले लोग ही यहाँ आते हैं। अच्छी क्लबों में तो प्रवेश शुल्क होता है।

दरवाज़ा खोलते ही मद्धिम रोशनी और डी॰जे॰ के संगीत की ऊँची आवाज़ में, दुर्गंध-सुगंध की मिश्रित गंध बड़ी तेज़ी से उनके फेफड़ों में घुसी। वे सम्मोहित से हुए बार की ओर चल पड़े। सिगरेट के धुएँ, स्मोक मशीन के बादलों और लेसर लाइट को पार करते हुए, वे बीयर का जग लेकर क्लब में एक कोना ढूँढने लगे। कोने में बैठते ही उन्होंने चारों ओर देखा–क्लब के बीचों-बीच कई जोड़े, कुछ साथ-साथ सटे, कुछ दूर-दूर, कुछ एक-दूसरे को चिपटे और कुछ लिपटे नाच रहे हैं। उनको देखते हुए वे जल्दी-जल्दी में बीयर के दो ग्लास गटक गए।

शरीर में गर्मी आनी शुरू हो गई। उन्होंने देखा, थोड़ी दूरी पर ही दो लड़कियाँ वाइन के ग्लास पकड़े इधर-उधर देख रही हैं। उनकी नज़रें हरेक के चेहरे पर घूम रही हैं। पीटर और जेम्स ने उन नज़रों को पहचान लिया। बैरे को बुलाकर पैसे देकर उनके ख़ाली हो रहे ग्लासों को भरने को कहा, इससे उन्हें पता चल जाएगा कि उन लड़कियों की मंशा क्या है और अपने लिए भी बीयर का एक और जग मँगवाया। वातावरण कानफोड़ू संगीत, ऊँची आवाज़ों, थिरकते क़दमों, लड़खड़ाती जुबानों से गूँज रहा है–किसी को किसी की बात सुनाई नहीं दे रही। सब ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे हैं। एक तरह से चिल्ला रहे हैं। एक कोने में एक महिला-पुरुष बेतहासा हँस रहे हैं और बार-बार एक-दूसरे से लिपट रहे हैं, चुंबन ले रहे हैं। डांस फ्लोर पर कुछ जोड़े एक-दूसरे से इतने सटे हुए हैं, जैसे वे एक-दूसरे में खो जाना चाहते हैं। सोका म्यूज़िक समाप्त हुआ, और अब हिप-होप शुरू हो गया, कुछ जोड़े बैठ गए, कई नए आए। क़दमों, कूल्हों और कमर का रिद्म शुरू हुआ।

रात घिरने लगी और भीड़ बढ़ने लगी है। लेसर लाइट्स के बदलते रंगों में डांस फ्लोर भर गया। लड़कियों ने बैरे से पूछा कि उनके ग्लास किसने भरवाए हैं, बैरे ने उन दोनों की ओर इशारा कर दिया। लड़कियों ने ग्लास ऊँचे करके धन्यवाद किया। जेम्स और पीटर की बाँछें खिल गईं।

गीत बदला, संगीत बदला, सालसा डांस शुरू हो गया। लड़कियाँ उठकर जेम्स और पीटर की तरफ़ आ गईं और अपना परिचय दिया–लौरा और सहरा, जेम्स और पीटर ने अपना नाम बताकर हाथ बढ़ा दिए। उन्होंने डांस फ्लोर की ओर इशारा किया। चारों के पैर उस पर थिरकने लगे। जेम्स और पीटर ने अब गौर से उन दोनों को देखा। वे सुगठित बदनवाली, बहुत चुस्त-दुरुस्त, जीवन से भरपूर लगीं उन्हें। ऐसी लड़कियाँ उनके समुदाय में बहुत सुंदर मानी जाती हैं। आज की रात इतनी सुंदर लड़कियों का सान्निध्य प्राप्त होगा उन्हें, अपने भाग्य पर इठलाने लगे वे।

वातावरण में फैली मादकता, दो जग बीयर के बाद, व्हिस्की पीने से दोनों पर नशा हावी हो गया। नसें कसने लगीं। स्नायुओं में तनाव बढ़ गया। शराब देखकर इनसे रहा नहीं जाता और हमेशा की तरह अधिक ही पी लेते हैं। पीटर लौरा पर थोड़ा झुक गया, लौरा ने भी झुकने दिया और उसने अपना एक बाजू पीटर की बगल में डाल दिया, पीटर उसके और करीब हो गया। सहरा ने खुद ही जेम्स के गले में अपनी बाँहें डाल दीं। जेम्स ने भी उसकी कमर को हाथों से कस लिया। कुछ देर वे इसी तरह नाचते रहे। एक-दूसरे के साथ और फिर कभी एक दूसरे से परे होकर। पीटर के अंग बेचैन हो गए, उससे अब इंतज़ार नहीं हो रहा।

उसने लौरा से पूछ ही लिया–'यहाँ से जाने के बाद क्या करेंगी आप?'

'कुछ नहीं, हम फ्री हैं, आप भी चल सकते हैं हमारे साथ, हल्का-फुल्का कुछ खाएँगे और फिर आप जो चाहेंगे, वही करेंगे। सहरा मेरी रूम मेट है।

पीटर ने ख़ुश होकर उसे अपनी बाँहों में भर लिया, लौरा भी उसकी बाँहों में लहराने लगी। सहरा जेम्स के साथ लिपट-लिपटकर नाचने लगी। पीटर ने झूमते हुए कहा–'चलो अब चलते हैं?'

'हमें वाशरूम जाना है। आप इंतज़ार करें हम अभी आती हैं।' कहकर वे चली गईं।

दोनों इंतज़ार करने लगे और उन्होंने एक-एक

ग्लास वाइन का और मँगवा लिया। इस बार बैरा ऑर्डर से पहले उनसे पैसे लेना भूल गया। दूसरे जोड़ों को मदमस्ती में देखकर उन दोनों को कुछ होने लगा। एक ही घूँट में ग्लास ख़ाली कर दिए उन्होंने। लौरा, सहरा अभी वाशरूम से लौटी नहीं। थोड़ा-सा पीने के बाद पीटर का अपने पर काबू नहीं रहता और आज तो उसने बहुत पी ली है। उसने अपनी कमीज़ उतारी और मेज़ पर चढ़कर स्ट्रिपर डांस करने लगा, संगीत की धुन पर, बेहूदा हरकतें शुरू हो गईं, जाँघों पर हाथ फेरने लगा और गुप्तांगों पर हाथ रखकर, कमर मटका-मटकाकर नाचने लगा। फिर कभी अपनी छातियों को छूने लगा, जेम्स ने भी उसी का अनुसरण किया और उनके आस-पास के लोग तालियाँ बजा-बजाकर उन दोनों का मज़ा लेने लगे।

उन पर नशा इतना हावी हो गया था कि वे गिरने लगे और लौरा, सहरा को आवाज़ें देने लगे, वाशरूम की ओर देखने लगे, वाशरूम मुख्य दरवाज़े के पास है। उनकी आवाज़ें तेज़, लाउड संगीत और लोगों के शोर-गुल में खो गईं। मुख्य दरवाज़े से दो लड़कियाँ भीतर आईं, उन्हें वे दोनों लौरा और सहरा लगीं। वे उन्हें लिपटने को उनकी ओर बढ़े। वे चीख़ पड़ीं। उन लड़कियों के पुरुष मित्र आगे आए, उन्होंने पीटर और जेम्स को एक-एक घूँसा ही लगाया था कि वे चित्त होकर फ़र्श पर लुढ़क गए। बैरे ने आकर उनकी जेबें देखीं, वह अपनी पेमेंट लेना चाहता है, जो वह पहले लेना भूल गया था। जेबें ख़ाली हैं। लौरा और सहरा नाचते-नाचते उनकी जेबें ख़ाली कर गईं और वाशरूम के बहाने वहाँ से निकल गईं। सिक्योरिटी गार्ड्स को बुलाया गया।

सिक्योरिटी गार्ड्स लुढ़के हुए पीटर और जेम्स को घसीटते हुए क्लब से बाहर ले आए और एक कोने में उन्हें लाकर लिटा गए। थोड़ी देर बाद आकर उनकी शर्टें उन पर फेंक गए। वहाँ और भी कई पियक्कड़ गिरे पड़े थे। अच्छे क्लबों के बाहर तो पुलिस होती है और ऐसे लोगों को उठाकर ले जाती है, पर इस क्लब के तो आस-पास भी पुलिस नहीं होती, वह जानती है कि इन लोगों का रोज़ का काम है, हत्या या बलात्कार के समय ही पुलिस वाले पहुँचते हैं। रात के तीन बजे सिक्योरिटी गार्ड कई और टुन, टल्ली हुए पियक्कड़ों को उन्हीं के साथ सटाकर लिटा गए, सारी रात वे दोनों क्लब के बाहर कोने में सोए रहे।

सुबह सूरज पूरे जोश के साथ धरा पर अपनी रोशनी लेकर आया। पीटर की आँखों पर सूर्य चमका। उसने आँखों पर हाथ रख लिया और जब जेम्स की आँखों पर उसने अपनी किरणें फेंकीं तो वह कुलबुलाया–'साला यह सूरज क्यों निकलता है। इसको और कोई काम नहीं, बास्टर्ड। तंग करने चला आता है। कच्ची नींद से उठा दिया। इतनी प्यारी नींद आ रही थी।'

'अबे उठ माँ के.. नींद के प्रेमी, गद्दों पर पड़े हैं न, जो नींद टूट गई, चलो उठो।' सिक्योरिटी गार्ड ने ठोकर से उठाया।

'सफ़ाईवाले आ रहे हैं, यहाँ की सफ़ाई करनी है। चलो, उठो, अपने-अपने घरों को जाओ।' वह रूखा-सा बोला। उसे रोज़ ऐसे लोगों को सँभालना पड़ता है।

घर के नाम पर वे दोनों बौखलाकर उठ बैठे–वे कहाँ हैं? चारों ओर वे देखने लगे। अरे क्लब के बाहर, कमीज़ें पास पड़ी हुई हैं। उन्होंने सिर पकड़ लिया। सिर में दर्द की तीखी लहर दौड़ गई।

सफ़ाईवाले आ गए, वे ख़ाली बोतलें, बीयर के केन और सिगरटों के टुकड़े उठाने लगे। उन दोनों ने भी कमीज़ें पहनीं और ज्यों ही उठने लगे तो उन्होंने महसूस किया कि उनके अधोवस्त्र चिपचिपे और गीले हैं। वे धीरे-धीरे उठे, खड़े होना मुश्किल हो रहा था। बड़ी कठिनाई से खड़े होकर उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला तो जेबें ख़ाली मिलीं।

वे चिल्ला पड़े–'इनको नरक में मार पड़े, कुतियाँ पैसे ले गईं और हमें खुद के लिए छोड़ गईं। कल कितनी चाह थी। मेहनत की कमाई भी गई और सुख भी नहीं मिला। अरे लूट लिया ग़रीबों को, थू, कुतिया।'

सफ़ाई मजदूर इनकी ओर देखने लगे, जेम्स उनको मुखातिब होकर बोला–'भाई, अमरीका के लोगों को मंदी ने निचोड़ दिया है, जो बेघर लोगों को भी लूटने लगे हैं, सरकार को कुछ करना चाहिए।'

उनके पास एक डॉलर भी नहीं बचा। जेबें ख़ाली हैं। फूड स्टैम्प्स पहले ही बेच चुके हैं। कल का नशा आज भी उन पर हावी है, वे लड़खड़ाते क़दमों से घर की ओर चल पड़े, गत्ते का टुकड़ा उठाने, धंधे पर जो जुटना है।

101, Guymon Court, Morris Ville, NC-27560 USA
फोन : 919678-9056; **मोबाइल** : 919801-0672;
ई-मेल–sudhaom9@gmail.com;
वैबसाइट–www.vibhom.com,
www.shabdsudha.blogspot.com

('कमरा नं॰ 103' कहानी-संग्रह से)

कहानी

डॉ० मीना अग्रवाल

अहम्

छत के पंखे की सनसनाहट के बीच अविनाश ने आभा के चेहरे की ओर देखा, उस पर पछतावा नहीं था, भावना रहित सपाटपन था। अविनाश ने गंभीर स्वर में उससे कहा, 'आभा! अविनाश तो मेरा परम मित्र है ही, एक प्रकार से तुम भी मेरी मित्र ही हो, क्योंकि हम दोनों ने ग्रेजुएशन तो साथ-ही-साथ किया था, सहपाठी होना भी संबंधों को एक तरह से मित्रता के सूत्र में बाँध देता है।'

'क्रोध अंधा नहीं होता। यह तो बहुत दूरदर्शी, हर समय सचेत और सतर्क रहनेवाली भावना है आभा!' अविनाश ने आभा को समझाते हुए कहा। वह दु:खी थी और चेहरे से लग रहा था, मानो वह एक ऐसे स्थान पर आ गई हो, जहाँ निर्णय करने की क्षमता आदमी के हाथ से निकल जाती है। अविनाश ने बात आगे बढ़ाई। कहा, 'क्रोध हमेशा दुर्बल पर उतरता है, शक्तिशाली पर नहीं या फिर वह स्वयं उस व्यक्ति को अपना निशाना बनाता है, जो क्रोध में सोचने-समझने की स्थिति खो बैठा होता है।

दृष्टि उठाकर अविनाश ने आभा की ओर देखा। उसके केश उलझे हुए थे, आँखें सजल थीं और चिंता की ज्वाला में तपकर उसका चेहरा कुछ लंबोतरा हो गया था। सफ़ेद रंगत कुछ मटमैली-सी दिखाई दे रही थी और माथा उस भीगे हुए कपड़े की कतरन की तरह दिखाई दे रहा था, जो अभी-अभी निचोड़कर फैलाया गया हो।

अभी दोपहर का समय था। अप्रैल की अर्द्धगर्म धूप आँगन और दीवारों पर सफ़ेद चादर की भाँति फैली हुई थी। पश्चिम से पूरब की ओर बहती तेज़ हवा के थपेड़ों से खिड़कियों के पर्दे रुक-रुककर थरथराते दिखाई दे रहे थे। यद्यपि लू ने अभी लू की स्थिति ग्रहण नहीं की थी, पर सूरज की तेज किरणें माहौल को गर्म करती जा रही थीं। अविनाश ने गंभीर मुद्रा में कमरे की ओर निहारा। चीज़ें उसी तरह सलीक़े से सजी हुई थीं, जैसी कि वे सदैव होती थीं। पर एक-एक चीज़ पर उदासी की एक भारी परत-सी चढ़ी थी। अविनाश को जीवन में पहली बार ऐसा लगा, मानो घर का एक सदस्य जब किसी घटना के कारण उदास हो जाता है तो घर की वे सब चीज़ें भी उदास-उदास दिखाई देने लगती हैं, जो जीवित नहीं हैं, निर्जीव हैं, निष्प्राण हैं। दीवार पर टिक-टिक करती क्लॉक से लेकर शो-केश में सजे फोम के सुंदर से ख़रगोश तक जितनी भी चीज़ें आभा के कमरे में थीं, सब चुप थीं, निस्तब्ध-निस्तब्ध-सी बीमार-बीमार-सी दिखाई दे रही थीं। आभा नॉर्मल होती, प्रसन्न चित्त होती, हँसती खिलखिलाती रहती तो लगता कि कमरे की सभी चीज़ों में जैसे जान पड़ गई है, सब हर्षित हैं, संतुष्ट हैं, प्रसन्नता की छाप है सबके मुख पर। मनुष्य की मन:स्थिति पर ही सब निर्भर करता है ना!

अविनाश जानबूझकर आज उस समय यहाँ आया था, जब उसका मित्र प्रकाश घर पर नहीं था। वह जानता था कि प्रकाश इस समय कार्यालय में होगा। अविनाश यह भी जानता था कि प्रकाश दोपहर को लंच के लिए घर पर नहीं आएगा। वह पिछले दो महीने से घर पर लंच नहीं कर रहा है, दफ़्तर की कैंटीन ही में कुछ खा-पी लेता है। आभा से नाराज़ है ना! दो महीने बीत गए, दोनों के बीच बातचीत नहीं हुई, वार्तालाप नहीं हुआ, एक वाक्य तक का आदान-प्रदान नहीं हुआ, दोनों के बीच। एक विचित्र-सा झूठा अहंकार है, जो आभा और प्रकाश, दोनों के पाँवों में ज़ंजीर बनकर लिपट गया है। दोनों ही अपने-अपने अहंकारों की सीमाओं को तोड़कर आगे नहीं बढ़ रहे हैं। पहले गुस्सा था, अब अहं है, आत्मसम्मान है और एक ऐसी स्थिति है, जिसे संपर्क-सूत्र टूट जाने के बाद संकोच का नाम दिया जाता है।

छत के पंखे की सनसनाहट के बीच अविनाश ने आभा के चेहरे की ओर देखा, उस पर पछतावा नहीं था, भावना रहित सपाटपन था। अविनाश ने गंभीर स्वर में उससे कहा, 'आभा! अविनाश तो मेरा परम मित्र है ही, एक प्रकार से तुम भी मेरी मित्र ही हो, क्योंकि हम दोनों ने ग्रेजुएशन तो साथ-ही-साथ किया था, सहपाठी होना भी संबंधों को एक तरह से मित्रता के सूत्र में बाँध देता है।'

आभा जो अब तक मूर्ति की तरह चुप बैठी थी, धीमे से बोली, 'अविनाश, मैं तो तुम्हें हमेशा अपने भाई की तरह मानती रही हूँ। और तुम्हारा सम्मान इसलिए करती रही हूँ कि तुम कॉलेज के साथियों में सबसे ज़्यादा प्रतिभाशाली थे। घटनाओं को उनके पूरे परिप्रेक्ष में समझते थे और सामने वाले की मन:स्थिति को इतने सही ढंग से समझ लेते थे कि कई बार तो हम सब लड़कियाँ हैरत में पड़ जाती थीं, कई बार जब तुम बताते थे तो लगता था कि अमुक वास्तव में वह नहीं है, जो सामने से दिखाई दे रहा है।

आभा की बात सुनकर अविनाश धीरे से मुस्कराया, बोला, 'आभा, तुम निकटता के कारण प्रशंसा कर रही हो मेरी। वरना सच यह है कि आदमी अधिक-से-अधिक ज्ञान अर्जित करने के बाद भी अज्ञानी ही रहता है, कई बार। हद तो यह है कि वह अपने आपको भी नहीं जानता कि वास्तव में वह है क्या। तुम भी भीतर से अपने आपको नहीं जानती हो, प्रकाश भी नहीं, मैं भी नहीं। भावनाएँ हमें जब किसी विपरीत स्थिति में ला खड़ा करती हैं तो हम नहीं जान रहे होते हैं कि इन भावनाओं का मूल कारण क्या है?

पछुआ हवा के तेज झोंके से खिड़की पर पड़ा पर्दा थरथराया, हवा की तीव्र तरंग भीतर आई तो सामने दीवार के साथ लटका हुआ केलैंडर ज़ोर-ज़ोर से फड़फड़ाने लगा। आभा ने उठकर खिड़की के पट बंद दिए ,लाइट ऑन कर दी। बिजली की रोशनी में आभा का चेहरा कुछ और भी लंबोतरा हो गया था।

'यह कैसे हो सकता है अविनाश कि आदमी अपने आपको भी न जानता हो, यह तो हो सकता है कि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के बारे में पूरी जानकारी न रखता हो, परंतु वह स्वयं अपने आपसे अपने व्यक्तित्व से परिचित न हो, यह तो बड़ी विचित्र-सी बात लगती है मुझे।'

'हाँ विचित्र-सी बात है, लेकिन यह सच है। आदमी पूरी तरह नहीं जानता है अपने आपको और अज्ञानता में वह सब करता रहता है, जिनके बारे में उसे पता नहीं होता कि वह क्यों कर रहा है।'

इससे पहले कि बात आगे बढ़ती, अविनाश ने देखा कि आभा की पालतू बिल्ली चुपके से आकर उसकी गोद में आ बैठी है। आभा ने सफ़ेद रंग की इस बिल्ली को धीरे से सहलाया।

अविनाश ने कहा, 'बिल्ली को समझना आसान है आभा, आदमी को समझना आसान नहीं है। बिल्ली किस समय भूखी है, उसे किस समय क्या चाहिए। यह सब जान लेना आसान है, क्योंकि बिल्ली की भावनाएँ सीमित हैं और सीधी भी हैं। आदमी में भावनाएँ सीधी और सीमित नहीं होती हैं। बहुत जटिल और उलझी हुई होती हैं। बिल्ली शोध का विषय नहीं है। आदमी शोध का विषय है आभा।'

'तुम तो हमेशा ही ऐसी बातें करते हो अविनाश, जो आसानी से समझ में नहीं आतीं, पता ही नहीं चलता कि बातचीत में जिन शब्दों का तुम प्रयोग कर रहे हो, उनका लक्ष्य किस ओर है।'

'बताता हूँ, बताता हूँ।' अविनाश ने हल्की मुस्कान के साथ आभा की ओर देखते हुए कहा, 'उस दिन तुम्हें अगर यह ज्ञात हो गया होता कि प्रकाश कार्यालय से जो क्रोध साथ लेकर आया है, वह बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा है, लेकिन कहाँ निकले? मैंने कहा न कि क्रोध बहुत सतर्क, बहुत सचेत रहने वाली भावना है, क्रोध अपना शिकार ऐसे व्यक्ति को बनाता है, जो उसके लिए सुविधाजनक हो। क्रोध से पागल हो गया आदमी भी बाघ के जबड़ों में हाथ नहीं डालता। क्रोध जानता है कि इसमें ख़तरा है, इसीलिए तो मैं कहता हूँ क्रोध अंधा नहीं होता, वह ठीक तरह से चुनकर अपना पात्र तलाश करता है। प्रकाश के साथ उस दिन यही तो हुआ था ना!'

'क्या!' आभा ने आश्चर्य चकित होकर पूछा। घड़ी की सुई एक के अंक से कुछ आगे बढ़ गई थी। आँगन अब भी धूप से भरा हुआ था। सामने के बड़े से रोशनदान में कबूतरों का एक जोड़ा आकर बैठ गया था और गुटरगूँ कर रहा था।

'क्या कबूतर आपस में नहीं लड़ते? गुस्सा नहीं करते एक-दूसरे पर?' आभा ने गंभीरता से भरे स्वर में

अविनाश से पूछा।

'शायद नहीं, अविनाश ने कहा, 'क्योंकि वे उन परिस्थितियों से नहीं गुज़र रहे होते हैं, जिनसे आदमी गुज़र रहा होता है। मैंने तुम्हें बताया न कि यदि परिस्थितियों का ज्ञान तुम्हें होता तो तुम समझ लेतीं कि अविनाश मन में जो घुटन लेकर आया है, उसे व्यक्त करने के लिए तुमसे ज़्यादा सुविधाजनक कोई नहीं है। क्योंकि वह अपने बॉस मलकानी को तो झाड़ नहीं सकता था, उनके दुर्व्यवहार पर।'

आभा ने अविनाश की ओर देखा, वह बहुत गंभीर था और एक-एक शब्द को सोच-सोचकर बोल रहा था, 'सिर्फ़ तुम्हें ज्ञात होता आभा कि वह मलकानी के माँगने पर एक साधारण-सी फाइल तुरंत उनके सम्मुख नहीं कर सका था। जिस पर प्रकाश के बॉस मलकानी ने उसे बहुत ही असभ्य ढंग से डाँटा था, सर्विस से हटा देने तक की धमकी दी थी। तुम समझ सकती हो कि प्रकाश पर इस अभद्र व्यवहार की प्रतिक्रिया तो हुई होगी, गुस्सा भी आया होगा उसे, यह सोचकर भी तकलीफ़ हुई होगी कि उसे अकारण, बिना किसी दोष के प्रताड़ित किया गया है।'

'अब तुम बताओ कि कार्यालय से कुंठा और गुस्सा लिए घर लौटे प्रकाश के सामने क्या रास्ता था। तुम्हें नहीं पता है आभा कि क्रोध ऐसी ज्वाला होती है, जो बुझती नहीं है, निरंतर सुलगती रहती है, और ठीक ऐसे अवसर पर भड़ककर बाहर निकल आती है, जहाँ प्रतिशोध का ख़तरा न हो।'

'तुम व्यस्त थीं, नन्ही स्वीटी के घाव पर मरहम रखकर उसे पट्टी बाँध रही थीं। प्रकाश यह जानता था, पर उसके अंदर की कुंठा, उसके भीतर का क्रोध तो यह नहीं जानता था। चाय बनने में देर हुई तो प्रकाश के मन का ज्वालामुखी एकदम फटकर बाहर आ गया। वह इसलिए बाहर आ गया कि तुमसे बेहतर और कोई पात्र सुविधाजनक नहीं हो सकता था उसके लिए।

'तुम पर प्रकाश के इस कटु व्यवहार की स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई। कोई और समय होता तो शायद तुम इस घटना को नज़रअंदाज़ कर सकती थीं, पर स्वीटी के चोट खाकर घायल होने से तुम भी भीतर-ही-भीतर तिलमिला रही थीं। तुम्हें दुख था कि कोई भी घर में तुम्हारा हाथ बँटाने वाला नहीं है। प्रकाश भी कार्यालय से आकर ड्राइंगरूम में बैठ गए हैं। पूछा तक नहीं कि क्या हुआ स्वीटी को।'

'एक ज्वालामुखी तुम्हारे भीतर भी था उस समय, समय पाकर फट पड़ा वह भी, क्योंकि तब प्रकाश से बेहतर और कोई पात्र नहीं था तुम्हारे सामने भी, स्पष्ट है कि तुम उस पत्थर को तो प्रताड़ित कर नहीं सकती थीं, जिससे ठोकर खाकर स्वीटी गिरी थी।'

अविनाश ने देखा, सोच की कुछ लकीरें आभा के माथे पर उभर आई हैं।

'हम सब अपनी निहित, अपनी गुप्त प्रतिक्रियाओं के साथ बँधे रहते हैं, आभा। हमें ज्ञान ही नहीं होता कि यह प्रतिक्रिया हमें कब, क्या मोड़ देने को प्रेरित करती रहती है।'

'हो सकता है अविनाश,' आभा ने चिंतन से भरे स्वर में कहा, 'मलकानी भी उस दिन किसी ऐसे व्यक्ति से उलझकर आ रहा हो, जिसके कारण उत्पन्न हुआ क्रोध वह उस व्यक्ति पर निकालने की स्थिति में न हो और उसके लिए अविनाश ही सबसे ज़्यादा सुविधाजनक रहे हों।'

'बिल्कुल, बिल्कुल, हो सकता है आभा।' अविनाश ने आभा की बात का समर्थन करते हुए कहा।

'ये सारे पात्र अपने भीतर की प्रतिक्रियाओं से अपरिचित थे और इस बात से भी अपरिचित कि वह भीतर जो घुटन पल रही थी, वह उस व्यक्ति पर निकालने का रास्ता ढूँढ रही थी, जिससे किसी प्रकार के प्रतिशोध का ख़तरा नहीं हो।'

'शायद तुम ठीक कहते हो अविनाश।' आभा ने कहा और सोच-विचार की मुद्रा में सिर झुका लिया।

'लेकिन मैं जानता हूँ आभा।' अविनाश ने असली बात पूरी करते हुए कहा, 'अब जिस अहंकार ने तुम दोनों को संकोच की गिरफ़्त में ले लिया है, उसकी गाँठ मेरे या किसी और के कहने से नहीं खुलेगी। वह तब ही खुल पाएगी, जब किसी बड़ी आवश्यकता की उँगलियाँ उसे खोलने के लिए बढ़ेंगी।'

रोशनदान से कबूतरों का जोड़ा उड़कर कभी का जा चुका था। आँगन में धूप अब भी फैली थी। गर्मी थी, लेकिन लू की तपन अब भी नहीं थी। आभा उठी और फ्रिज से ठंडा पानी ले आई।

अविनाश ने पानी पीते हुए कहा, 'अपने आपको समझना बहुत मुश्किल है आभा, बहुत ही मुश्किल।'

आभा ने अविनाश की बात सुनी, सोचा और उठकर टी॰वी॰ ऑन कर दिया।

16 **साहित्य विहार,**
बिजनौर (उ॰प्र॰)
मो॰ 07838090237

साहित्य-समाचार

श्रीमती सूर्यबाला के रचना संसार पर कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों में प्रख्यात लेखिका और व्यंग्यकार श्रीमती सूर्यबाला के रचना संसार पर दो कार्यक्रम संपन्न हुए, जिनमें वे दर्शकों से रू-ब-रू हुईं। सुबह मध्य भारत साहित्य समिति में डॉ॰ सूर्यबाला ने अपनी कहानी 'बाऊजी और बंदर' एवं व्यंग्य-रचना 'सामना यमराज से' का पाठ किया तथा श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर दिए। उन्होंने अपनी सद्य:प्रकाशित पुस्तक 'अलविदा अन्ना' पर भी विचार व्यक्त किए। संध्या समय सांस्कृतिक संस्था 'सूत्रधार' के कार्यक्रम में डॉ॰ सूर्यबाला ने कहानी 'होगी जय पुरुषोत्तम नवीन' का पाठ किया। इस अवसर पर उनकी व्यंग्य-रचना 'एक पुरस्कार यात्रा' का रंग-रूपिया नाट्य संस्था के कलाकारों द्वारा मंचन भी किया गया।

हिंदी साहित्य सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों भिवानी में गुगराम एजुकेशन एंड सोशल वैलफेयर सोसाइटी, वेहल द्वारा विभिन्न सम्मान प्रदान किए गए। वर्ष 2010 के लिए श्री गुगनराम सिहाग स्मृति साहित्य सम्मान श्री शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (बिखरा आसमान कविता), प्रो॰ शामलाल कौशल (जीना एक कला है निबंध) व डॉ॰ दोड्डा शेषु बाबु (प्रगतिशील आलोचना एवं हिंदी कविता आलोचना) के लिए; श्रीमती गिनादेवी स्मृति साहित्य सम्मान श्री एम॰डी॰ मिश्रा 'आनंद' (इंद्र धनुष के रंग जीवन के संग कहानी-संग्रह) व श्री मणिक तुलसीदास गौड़ (भरोसा बालकहानी-संग्रह) के लिए; श्रीमती रज्जोदेवी नंदाराम सिहाग स्मृति साहित्य सम्मान श्री दिनेशचंद्र दुबे (बुझे हुए चिराग कहानी-संग्रह), श्री महेशचंद्र द्विवेदी (लव जिहाद कहानी) व श्री मनुस्वामी (बक्से में धूप कविता) को प्रशस्ति-पत्र; वर्ष 2011 के लिए श्री गुगनराम सिहाग स्मृति साहित्य सम्मान डॉ॰ सुशील गुरु (नेह कलश बालकाव्य), श्री रोहित यादव (वनस्पति जगत के दोहे), श्री राजेंद्र पाराशर (ग़ज़ल प्रवेशिका शोध) व डॉ॰ सुधा शर्मा 'पुष्प', नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथा राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की काव्यदृष्टि तुलनात्मक अध्ययन के लिए; श्रीमती गिनादेवी स्मृति साहित्य सम्मान डॉ॰ महेंद्र अग्रवाल (ग़ज़ल और नई ग़ज़ल शोध), डॉ॰ तारासिंह (समर्पिता कविता), श्री राजेंद्र नटखट (त्रिपदीय गीता काव्य); श्रीमती रज्जीदेवी नंदाराम सिहाग स्मृति सम्मान श्रीमती रजनी सिंह (भूमिजा-भूमिका महाकाव्य), श्री कुशेलचंद्र श्रीवास्तव (डूबती लकीरें कहानी) व श्रीमती सुरेखा शर्मा (रिश्तों का एहसास कहानी) के लिए; श्री देवेंद्रकुमार मिश्रा (जीभर के जीना कविता), श्रीमती नीरजा द्विवेदी व अखिलेशकुमार शर्मा (कमल करे अभिषेक कविता) को प्रशस्ति-पत्र; वर्ष 2012 के लिए श्री गुगनराम सिहाग स्मृति साहित्य सम्मान डॉ॰ उदय प्रतापसिंह (सामाजिक व्यवस्था में संत कवियों का योग शोध) व श्री बस्तीराम 'बस्ती' (जीवन का सच कहानी); श्रीमती गिनादेवी स्मृति साहित्य सम्मान डॉ॰ राजकुमारी शर्मा (समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में मूलबोध शोध), श्रीमती लक्ष्मीरूपल (गोडे बिटिया दीजै कहानी) व श्री कमलचंद्र वर्मा (अंतिम निर्णय कहानी); श्रीमती रज्जीदेवी नंदादाम सिहाग स्मृति साहित्य सम्मान डॉ॰ मनोहरदास अग्रावत (जीवनरक्षा स्वास्थ्य), डॉ॰ मथुरेशनंदन कुलश्रेष्ठ (अनुपस्थिति रचनाकार की तथा अन्य निबंध), डॉ॰ मनीमनेश्वर साहू (ध्येय तोर अँगना कविता), श्रीमती ममता किरण (वृक्ष था हरा-भरा कविता), श्रीमती सपना मांगलिक (कल क्या होगा कविता), डॉ॰ अनु गौड़ (यत्र-तत्र सर्वत्र कविता), डॉ॰ रवि शर्मा 'मधुप' (एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो), कुमारी सुरम्या शर्मा (मिट्टी का कर्ज़ कहानी); पं॰ आर्य प्रह्लाद गिरि (स्वगंधे कविता); श्री अनुपिंद्र सिंह 'अनूप' (आस के बूटे कविता) व श्री हीरालाल साहनी (लीक से परे कहानी), श्रीमती हरकीरत हीन (दर्द की महक कविता) को प्रशस्ति-पत्र दिया गया।

सम्मान समारोह एवं संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों शाहजहाँपुर में गांधी पुस्तकालय द्वारा बाल साहित्यकार श्रीमती सुकीर्ति भटनागर को 'प्रभा स्मृति बाल साहित्य सम्मान' के अंतर्गत प्रशस्ति-पत्र, प्रतीक-चिह्न, अंगवस्त्र, श्रीफल तथा 3100 रुपए की राशि भेंट की गई। इस अवसर पर बालपत्रिका 'बालप्रभा' के नए अंक, श्रीमती भटनागर के उपन्यास 'अमरो' एवं श्री नागेश पांडेय 'संजय' की पुस्तक 'जो बूझे वह चतुर सुजान' का विमोचन भी किया गया। समारोह में सर्वश्री सुरेंद्र विक्रम, राजमणि यादव, तनवीर खाँ, सुकीर्ति भटनागर, अरविंद मिश्र व सत्यप्रकाश मिश्र ने

अपने विचार व्यक्त किए।

'मेरे साक्षात्कार' राष्ट्रपति को भेंट

14 नवंबर को राष्ट्रपति भवन में आयोजित समारोह में प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ॰ श्यामसिंह 'शशि' ने अपनी नवीन कृति 'मेरे साक्षात्कार' व सभ्यता संस्कृति' का विशेषांक राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी को भेंट किया तथा रिसर्च फाउंडेशन अंतर्राष्ट्रीय रोमा संस्कृति विश्वविद्यालय तथा भारतीय बालकल्याण संस्थान की ओर से श्री भूधर नारायण मिश्र व श्री एस॰बी॰ शर्मा ने साहित्य भेंट किया। इस अवसर पर वरिष्ठ साहित्यकार डॉ॰ राष्ट्रबंधु ने अपने विचार व्यक्त किए।

पुरस्कार समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में आयोजित सोलहवें रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार समारोह में कथाकार श्रीमती किरण सिंह को सम्मानित किया गया। रमाकांत स्मृति पुरस्कार समिति के संयोजक श्री महेश दर्पण ने पुरस्कार-योजना और रचना सरोकारों पर चर्चा करते हुए कथाकार रमाकांत की प्रासंगिकता को रेखांकित किया। 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक डॉ॰ प्रेम जनमेजय के आलेख 'मेरे हिस्से के रमाकांत' का पाठ कवि-व्यंग्यकार श्री लालित्य ललित ने किया।

साहित्य अकादेमी पुरस्कार घोषित

18 दिसंबर को साहित्य अकादेमी दिल्ली ने 22 भारतीय भाषाओं के लेखकों को अकादेमी पुरस्कार देने की घोषणा की। सर्वश्री जावेद अख़्तर (उर्दू) 'लावा', सुबोध सरकार (बांग्ला) 'द्वैपायन ह्रदेर धारे', अनिल बर (बोडो) 'देलफिनि अन्थाइ मोदाइ आरो गुबुन गुबुन खन्थाइ', सीताराम सपोलिया (डोगरी) 'दोहा सतसई', अंबिकादत्त (राजस्थानी) 'आंथ्योई नहीं दिन हाल', राधाकांत ठाकुर (संस्कृत) 'चलदूरवाणी', अर्जुन चरण हेम्ब्रम (संताली) 'चंदा बोन्गा' और नामदेव ताराचंदाणी (सिंधी) 'मंश-नगरी' को उनके कविता संग्रहों के लिए; श्रीमती मृदुला गर्ग (हिंदी) 'मिलजुल मन', श्री आर॰एन॰ जो डी क्रूज (तमिल) 'कोरकई' तथा श्री मनमोहन (पंजाबी) 'निवारण' उनके उपन्यासों के लिए; सर्वश्री तेमसुला आओ (अँग्रेज़ी) 'लबरनम फॉर माइ हेड' और मोही-उद-दीन रेशी (कश्मीरी) 'एन आतश' को कहानी-संग्रह के लिए; सी॰एन॰ रामचंद्रन (कन्नड़) 'आख्यान-व्याख्यान', तुकाराम रामा शेट (कोंकणी) 'मनमोतयां', सतीश कालसेकर (मराठी) 'वाचणारयाची रोजनिशी' और कात्यानी विद्महे (तेलुगु) 'साहित्यआकाशमलो सगम' को उनके निबंध-संग्रहों के लिए; माखोनमनि मोंङ्साबा (मणिपुरी) (चीङ्लोन अमदगी अमदा' व मनबहादुर प्रधान (नेपाली) 'मनका लहर र रहरहरू' को यात्रा-वृतांत के लिए; एम॰एन॰ पालूर (मलयालम) 'कथायिल्लतेवंटे कथा' को आत्मकथा, सुरेश्वर झा (मैथिली) 'संघर्ष आ सेहंता' को संस्मरण और विजय मिश्र (ओड़िया) 'बानप्रस्थ' को नाटक के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार दिए जाएँगे। पुरस्कारस्वरूप उन्हें एक ताम्रफलक, शॉल और एक लाख रुपए की राशि दी जाएगी। पुरस्कृत रचनाकारों को 11 मार्च, 2014 को कमानी सभागार में आयोजित समारोह में सम्मानित किया जाएगा। असमिया और गुजराती भाषा के पुरस्कारों की घोषणा बाद में होगी।

विजय वर्मा कथा सम्मान एवं हेमंत स्मृति कविता सम्मान

'सच पूछा जाए तो सच्चा इतिहास उस कालखंड में लिखी जाने वाली कृतियाँ हैं। अब उपदेश देने का वक्त समाप्त है। वह बोलिए, जिसे सुनने वाला भीतर से महसूस करे। अपने विचारों से जोड़ना कथनी को बेकार करना है।' यह उद्‌गार समारोह के प्रमुख अतिथि डॉ॰ दामोदर खड़से ने 4 जनवरी 2014 को श्री राजस्थानी सेवा संघ सभागार अंधेरी पूर्व मुंबई में श्री जे.जे.टी विश्वविद्यालय के साहित्यिक एकांश हेमंत फाउंडेशन के तत्त्वावधान में आयोजित विजय वर्मा कथासम्मान एवं हेमंत स्मृति कविता सम्मान के अवसर पर व्यक्त किए।

अतिथियों का स्वागत करते हुए संस्था की अध्यक्ष सुप्रसिद्ध साहित्यकार संतोष श्रीवास्तव ने कहा–'शरद सिंह ने लिव इन रिलेशनशिप की आँच से गर्माए गाँव कस्बे के बदलते परिवेश का वर्णन किया, वहीं हरेप्रकाश उपाध्याय ने ग्रामीण परिवेश में रची-बसी कविताओं से समय की समस्याओं को उभारा। सुपरिचित कथाकार संस्था की सचिव प्रमिला वर्मा ने विजय वर्मा और हेमंत की स्मृतियों को ताजा किया और उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

विजय वर्मा कथा सम्मान के लिए चयनित पुस्तक 'कस्बाई सिमोन' के बारे में संजीव निगम ने अपना वक्तव्य दिया। इसके पश्चात् विजय वर्मा कथा सम्मान डॉ॰ दामोदर

खड़से के कर कमलों द्वारा शरद सिंह एवं दिनकर जोशी द्वारा हेमंत स्मृति कविता सम्मान हरेप्रकाश उपाध्याय को प्रदान किया गया। पुरस्कारस्वरूप ग्यारह हजार रुपए की धनराशि स्मृतिचिह्न, शॉल एवं श्रीफल प्रदान किया गया। प्रसिद्ध कवि पत्रकार आलोक भट्टाचार्य ने अपने सधे हुए संचालन के दौरान कहा–'हेमंत स्मृति कविता सम्मान के विजेता आज हिन्दी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।'

समारोह में मुंबई के जाने माने लेखक, पत्रकार, साहित्यप्रेमी उपस्थित थे, जिनमें सूरजप्रकाश, मधु अरोड़ा, कवि पुनीत पांडेय, ब्रजभूषण साहनी, खन्ना मुजफ्फरपुरी, शाहिद खान, रवींद्र कात्यायन, प्रेम जनमेजय, दिव्या वर्मा, मीनू मदान, प्रमिला शर्मा, लक्ष्मी यादव, ज्योति गजभिए, प्रभा शर्मा, सुषमा सेनगुप्ता, आनंदी गैरोला, सरोज लिंगवाल, कमाला बड़ोनी, विजया पंत तुली, प्रवीण खन्ना आदि मुख्य थे।

प्रा॰ मनोहर व डॉ॰ विजया 'हिंदीसेवा सम्मान' से पुरस्कृत

द्विभाषिक पत्रिका 'शब्दसृष्टि' के संपादक तथा हिंदी व मराठी दोनों भाषाओं के बीच संबंध दृढ़ करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील और हिंदी व मराठी भाषा के प्रचार-प्रसार में समर्पित प्रा॰ मनोहर व उनकी जीवनसंगिनी डॉ॰ विजया को महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की ओर से स्मृतिचिह्न और सम्मानपत्र प्रदान कर 'हिंदीसेवा सम्मान' से पुरस्कृत किया गया। विश्वविद्यालय के कुलगुरु मा॰ विभूतिनारायण राय के करकमलों से प्रा॰ मनोहर ने प्रस्तुत पुरस्कार स्वीकार किया। इस समय भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक मा॰ रवींद्र कालिया, विश्वविद्यालय के कुलसचिव मा॰ डॉ॰ कैलाश खामरे, विश्वविद्यालय के जनसंपर्क अधिकारी मा॰बी॰एस॰ मिरगे, हिंदीलेखिका मा॰ ममता कालिया, मा॰ निर्मला जैन, विख्यात विचारक प्रा॰ जैमिनी कडू, राष्ट्रसंत तुकडोजी के साहित्य के भाष्यकार प्रा॰ डॉ॰ दिनकर येवलेकर, डॉ॰ सतीश पावडे आदि उपस्थित थे।

दिल्ली में स्पाइल (दर्पण) की रजत जयंती

स्पाइल की रजत जयंती 5 जनवरी 2014 को हिंदी भवन नई दिल्ली में धूमधाम के साथ मनाई गई। कार्यक्रम का शुभारंभ स्पाइल (दर्पण) के अमेरिका और दिल्ली के प्रतिनिधि डॉ॰ सत्येंद्रकुमार सेठी के परिचयात्मक संबोधन से हुआ। सबसे पहले सभी उपस्थित विद्वानों का स्वागत हुआ, जिनमें मुख्य अतिथि डॉ॰ अशोक चक्रधर, प्रो॰ हरमहेंद्र सिंह बेदी, प्रो॰ उबैदुर रहमान हाशमी, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, साहित्यिक-वैचारिक पत्रिका अक्षरपर्व की संपादिका सर्वमित्रा सुरजन, राष्ट्रीय दैनिक देशबंधु के समूह संपादक, राजीवरंजन श्रीवास्तव, राष्ट्रकिंकर के संपादक और लघुपत्रों के संघ के महामंत्री

विनोद बब्बर, देशबंधु के राजनीतिक संपादक शेषनारायण सिंह, अमर उजाला के वरिष्ठ उपसंपादक हरिप्रकाश शुक्ल, अंजुरी के संपादक बी॰के॰ शर्मा, यथासंभव के संपादक जीतेंद्रकुमार सिंह, साहित्य संस्थान के निदेशक फतेहचंद, हस्तक्षेप के संपादक अमलेंदु उपाध्याय, विशाखापत्तनम विश्वविद्यालय की प्रो॰ एस॰ शेषरत्नम्, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की पूर्व निदेशक और वरिष्ठ साहित्यकार विद्याबिंदु सिंह, उमेश चतुर्वेदी, वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक, जेएनयू विश्वविद्यालय के रशियन भाषा के प्रो॰ हेमंत पांडेय, डॉ॰ हरनेकसिंह गिल, जयप्रकाश शुक्ल, सत्येंद्रकुमार और सुरेंद्रकुमार सेठी मुख्य थे।

स्पाइल (दर्पण) के संपादक सुरेशचंद्र शुक्ल ने नॉर्वे में हिंदी-पत्रकारिता पर प्रकाश डालते हुए उन परेशानियों की ओर इशारा किया, जब अभाव तथा हिंदी के लिए उचित वातावरण न होने के बावजूद कैसे उन्होंने सन 1988 से स्पाइल (दर्पण) की शुरुआत की। सभी विद्वानों ने विदेशों में हिंदी पत्रकारिता को विस्तार देने के लिए पत्रिका और संपादक को बधाई दी। शरद आलोक ने इसके लिए सभी पाठकों, विदेशों में हिंदी के शिक्षकों, अविभावकों को धन्यवाद देते हुए ओस्लो स्थित भारतीय दूतावास और नार्वेजीय सरकार और सांस्कृतिक मंत्रालय को धन्यवाद दिया। उन्होंने आगे कहा कि विदेशों में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि यहाँ स्थानीय हिंदी पत्रिका के पाठक बढ़ रहे हैं और विदेशों में बसे लोगों के लिए हिंदी रोज़गार की भाषा बन रही है। इसके लिए उन्होंने विदेशों में भारतीय मूल के राजनीति में सक्रिय लोगों की भूमिका की तारीफ की। इस अवसर पत्रिका का लोकार्पण किया गया। कार्यक्रम का समापन विनोद बब्बर जी ने बड़ी खूबसूरती से किया।

सारस्वत एवं सृजन-सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों सहारनपुर में साहित्यिक संस्था 'समन्वय' द्वारा 24वाँ 'सारस्वत एवं सृजन-समारोह' आयोजित किया गया, जिसमें कबीर साहित्य के मर्मज्ञ श्री कमलापति पांडेय (बस्ती) को 'सारस्वत-सम्मान' प्रदान किया गया। सम्मान स्वरूप उन्हें शॉल, रजत अलंकरण, सम्मानपत्र, प्रतीक चिह्न, नारियल और पाँच हज़ार एक सौ रुपए की राशि भेंट की गई। संस्था का 'सृजन सम्मान' प्रख्यात ग़ज़लकार श्री ओमप्रकाश यती (नोएडा) तथा विख्यात गीतकार श्री राजेंद्र 'राजन'

(सहारनपुर) को दिया गया। समारोह की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध गीतकार डॉ॰ बुद्धिनाथ मिश्र ने की। संस्था का परिचय सचिव श्री विनोद भृंग ने प्रस्तुत किया। स्वागत भाषण डॉ॰ विपिनकुमार गिरि द्वारा दिया गया।

इस अवसर पर 'समन्वय परिवार' की स्मारिका का लोकार्पण भी हुआ। कार्यक्रम का संचालन श्री कृष्ण शलभ ने किया तथा संस्था अध्यक्ष डॉ॰ सुरेंद्र सिंघल ने धन्यवाद ज्ञापन किया। समारोह में देहरादून से आए सर्वश्री डॉ॰ अश्वघोष, अखिलेश प्रभाकर, ओ॰पी॰ गौड़, शिवराज राजू, हरिराम 'पथिक', डॉ॰ अजयकुमार जैन, शिव गौड़, डॉ॰ वीरेंद्र आज़म, मनीश कच्छल, रमेश चंद्र छबीला, डॉ॰ विजेंद्रपाल शर्मा, सुनील शर्मा आदि उपस्थित थे।

'चींटी के घर हाथी' का विमोचन

गत दिनों सहारनपुर में 'नीरजा स्मृति बालसाहित्य न्यास' की ओर से कवि श्री हरिराम 'पथिक' के बाल कविता-संग्रह 'चींटी के घर हाथी' का विमोचन बेरीबाग स्थित मोक्षायतन इंटरनेशनल योगाश्रम में साहित्य मनीषियों द्वारा किया गया। अध्यक्षता नोएडा से आए सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार श्री रमेश तैलंग ने की। प्रख्यात साहित्यकार डॉ॰ अश्वघोष मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे, जबकि योगाचार्य पद्मश्री भारतभूषण विशिष्ट अतिथि थे। वाणी-वंदना श्री सुशील नाज़ ने की।

इस अवसर पर न्यास के अध्यक्ष ओ॰पी॰ गौड़, राजकुमार गाबा एडवोकेट तथा साहित्यिक संस्था 'समन्वय' के अध्यक्ष डॉ॰ सुरेंद्र सिंघल और सचिव श्री विनोद भृंग ने कवि पथिक को शॉल ओढ़ाकर उनका अभिनंदन किया। संचालन न्यास के सचिव श्री कृष्ण शलभ ने किया। सर्वश्री अखिलेश प्रभाकर, शिवराज 'राजू', रमेशचंद्र छबीला, सुरेश सपन, सुनील जैन 'राना', रवि बक्शी, सुरेंद्र सचदेवा, नरेंद्र मस्ताना आदि अनेक बुद्धिजीवी एवं गणमान्य व्यक्ति समारोह में उपस्थित थे।

साहित्यिक क्षति

श्री ओंकारस्वरूप चतुर्वेदी का निधन

16 अक्टूबर को शिक्षाविद् एवं साहित्य-संगम प्रकाशक संस्थान के प्रमुख श्री ओंकारस्वरूप चतुर्वेदी का निधन हो गया। लगभग 93 वर्ष के उनके जीवन-क्रम में शिक्षा और साहित्य-साधना प्रमुख रही। शिक्षा विभाग में राजपत्रित पद से सेवानिवृत्त होने के उपरांत उन्होंने साहित्य-संगम प्रकाशन संस्थान की स्थापना की। उन्हें शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण सम्मान प्राप्त हुए और वे स्थानीय तथा राष्ट्र की अनेक साहित्यिक संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी एवं सदस्य रहे।

भाषा-विज्ञानी श्री कैलाशचंद्र भाटिया नहीं रहे

21 नवंबर को सुविख्यात भाषा-विज्ञानी श्री कैलाशचंद्र भाटिया का निधन हो गया। उनके परिवार में तीन पुत्र तथा एक पुत्री हैं। हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने में उन्होंने अथक परिश्रम किया। उनके विपुल रचना-संसार में 'अँग्रेज़ी-हिंदी अभिव्यक्ति कोश', 'भारतीय भाषाएँ', 'शब्दश्री', 'कामकाजी हिंदी', 'व्यावहारिक हिंदी', 'हिंदीभाषा शिक्षण', 'हिंदीभाषा : विकास और स्वरूप', 'राजभाषा हिंदी', 'हिंदी की मानक वर्तनी', 'हिंदी शब्द सामर्थ्य' तथा अनेक कृतियाँ व कोश हैं। साहित्य की अनन्य सेवा के लिए उन्हें 'मदनमोहन मालवीय पुरस्कार', 'नातालि पुरस्कार', 'सुब्रह्मण्यम भारती पुरस्कार' तथा अन्य सम्मानों से अलंकृत किया गया। वे कई अकादमियों तथा संस्थानों से संबद्ध रहे। भारत सरकार के अनेक मंत्रालयों की राजभाषा सलाहकार समितियों के सदस्य तथा रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, इंग्लैंड के फैलो रहे।

कवि-लेखक डॉ॰ अरुण प्रकाश अवस्थी का निधन

29 नवंबर को कोलकाता में कवि, लेखक एवं पत्रकार डॉ॰ अरुण अवस्थी का देहावसान हो गया। वे 75 वर्ष के थे। वे अपने पीछे पत्नी, एक पुत्र एवं एक पुत्री के अलावा भरा-पूरा परिवार छोड़ गए हैं। 1962 में उन्होंने कोलकाता में 'ज्योत्स्ना' साहित्यिक संस्था की स्थापना की। 'विश्वामित्र' एवं 'सन्मार्ग' समाचार-पत्र से भी काफी समय तक जुड़े रहे। उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं–'रावी तट' (खंडकाव्य), 'क्रांति का देवता', 'महाराणा का पत्र'। इसके अलावा लगभग 4500 गीत-ग़ज़ल एवं कविताएँ तथा समसामयिक विषयों पर निबंध भी प्रकाशित हुए।

हिन्दी साहित्य निकेतन

16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰)**

फोन : 01342-263232, 07838090732

ई-मेल :
giriraj3100@gmail.com
giriraj@hindisahityaniketan.com
वेबसाइट :
www.hindisahityaniketan.com

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
ग़ज़ल और उसका व्याकरण 150.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ॰ मीना अग्रवाल
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1 495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2 700.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-3 1100.00
हिंदी शोध के नए प्रतिमान 800.00
हिंदी शोध : नई दृष्टि 800.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ 995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1 500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2 550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3 525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4 595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5 895.00
हिंदी तुकांत कोश 300.00

समीक्षा एवं समालोचना

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
सवाल साहित्य के 200.00

डॉ॰ चंद्रकात मिसाल
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध 500.00
सिनेमा और साहित्य का अंत:संबंध 200.00

नवलकिशोर शर्मा
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति 150.00

धर्मेन्द्र उपाध्याय
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक 300.00

डॉ॰ अंजू भटनागर
डॉ॰ कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान 500.00

डॉ॰ योगेश गोकुल पाटिल
अमरकांत का कथासाहित्य 400.00

डॉ॰ अनुभूति
नारी समस्याओं का समाजशस्त्रीय अध्ययन 450.00

डॉ॰ सुषमा सिंह
राजस्थानी चित्रशैली में आखेट दृश्य 250.00
भोपाल के संग्रहालयों की चित्रकला 250.00

डॉ॰ ज्योति सिंह
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध 150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न 300.00

डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा 300.00

डॉ॰ मनोज कुमार
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य 250.00

डॉ॰ दीपा के॰
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर 250.00

डॉ॰ मीना अग्रवाल
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) 450.00

डॉ॰ हरीशकुमार सिंह
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य 350.00

डॉ॰ अनिलकुमार शर्मा
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान 350.00

डॉ॰ वी॰ जयलक्ष्मी
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा 450.00

डॉ॰ पूर्णचंद शर्मा
लोकरंगमंच के आयाम 200.00

डॉ॰ शंकर क्षेम
एक साक्षात्कार : पं॰ अमृतलाल नागर के साथ 150.00

अनिरुद्ध सिन्हा
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ 150.00

डॉ॰ ज्योति व्यास
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) 150.00

डॉ॰ लालबहादुर रावल
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व 300.00

डॉ॰ अशोककुमार
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार 350.00

डॉ॰ ओमदत्त आर्य
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन 500.00

डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित
आस्थावाद एवं अन्य निबंध 300.00
साहित्य और संस्कृति 300.00

डॉ॰ आशा रावत
हास्य-निबंध : स्वतंत्रता के पश्चात् 350.00

डॉ॰ प्रेम जनमेजय
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य 500.00

विनोदचंद्र पांडेय
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष 300.00

डॉ॰ स्वाति शर्मा
हिंदी बालसाहित्य : डॉ॰ सुरेंद्र विक्रम का योगदान 450.00

डॉ॰ पी॰आर॰ वासुदेवन
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव 300.00

अविनाश वाचस्पति/रवींद्र प्रभात
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति 495.00

रवींद्र प्रभात
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास 300.00

डॉ॰ विजय इंदु
सूरदास का सौंदर्यचित्रण 250.00

डॉ॰ मीनल रश्मि
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन 495.00

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (गीत खंड) 700.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (दोहा खंड) 700.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ॰ मीना अग्रवाल
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष 200.00

डॉ॰ शुचि गुप्ता
फिजी में प्रवासी भारतीय 300.00

डॉ॰ शिवशंकर लधवे
मुक्तिबोध का रचना-संसार 200.00

हास्य-व्यंग्य

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ 150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य 300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ 250.00
बाबू झोलानाथ 60.00
राजनीति में गिरगिटवाद 100.00
आदमी और कुत्ते की नाक 150.00
आओ भ्रष्टाचार करें 200.00

गोपाल चतुर्वेदी
दूध का धुला लोकतंत्र 150.00

गिरीश पंकज
आधुनिक बैताल कथाएँ 200.00

महेशचंद्र द्विवेदी
भज्जी का जूता 150.00
क्लियर फंडा 120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग 170.00

पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास
वसीयतनामा 150.00
नो टेंशन/ डॉ॰ सुरेश अवस्थी 170.00

काका हाथरसी
काका की विशिष्ट रचनाएँ 300.00
काका के व्यंग्य-बाण 300.00
कक्के के छक्के 200.00

लूटनीति मंथन करी 200.00
खिलखिलाहट 200.00
डॉ॰ आशा रावत
पैसे कहाँ से दें 200.00
चाहिए एक और भगतसिंह 100.00
महेश राजा
नमस्कार प्रजातंत्र 150.00
अशोक चक्रधर
ए जी सुनिए 100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए 100.00
चुटपुटकुले 60.00
तमाशा 60.00
रंग जमा लो 65.00
सो तो है 60.00
हँसो और मर जाओ 60.00
डॉ॰ बलजीत सिंह
नमस्ते जी 150.00
अब हँसने की बारी है 200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
1995 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 65.00
1996 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1997 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1998 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1999 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 120.00
2002 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 150.00
2003 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 150.00
2004 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ 100.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ 200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी 100.00
डॉ॰ शिव शर्मा
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य 50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) 150.00
अपने-अपने भस्मासुर 150.00
दामोदरदत्त दीक्षित
प्रतिनिधि व्यंग्य 100.00

हास्य-व्यंग्य : मधुप पांडेय के संग/ मधुप पांडेय 200.00
धमकीबाज़ी के युग में/निश्तर ख़ानक़ाही 60.00
ला ख़र्चा निकाल/गजेंद्र तिवारी 200.00
जलनेवाले जला करें/गजेंद्र तिवारी 60.00
कवयित्री सम्मेलन/ सुरेंद्रमोहन मिश्र 100.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं/सूर्यकुमार पांडेय 100.00
डॉ॰ हरीशकुमार सिंह
ये है इंडिया 120.00
आँखों देखा हाल 150.00
सच का सामना 150.00
लिफ़्ट करा दे 200.00
देवेंद्र के कार्टून/देवेंद्र शर्मा 80.00
कार्टून कौतुक/देवेंद्र शर्मा 120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र/डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा 120.00
अजगर करे न चाकरी/बाबूसिंह चौहान 150.00

कहानी

डॉ॰ आशा रावत
एक सपना मेरा भी था 200.00
विजयकुमार
एक थी माया 200.00
सुरेशचंद्र शुक्ल
सरहदों के पार 200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ 200.00
छोटे-छोटे सुख 200.00
कथा जारी है/बाबूसिंह चौहान 150.00
इक्कीस कहानियाँ/ सत्यराज 100.00
डॉ॰ मीना अग्रवाल
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) 150.00
कुत्तेवाले पापा 150.00
डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
एक बौना मानव 100.00
लव जिहाद 200.00
इमराना हाज़िर हो 150.00

हैं आस्माँ कई और भी/ नीरजा द्विवेदी 200.00
कौन कितना निकट/रेणु राजवंशी गुप्ता 120.00
लघु कथाएँ/डॉ॰ हरिशरण वर्मा 150.00
डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा
कमरा नं॰ 103 150.00
डॉ॰ इला प्रसाद
कहानियाँ अमरीका से 150.00
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका (सं॰)
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ 150.00
सुकेश साहनी, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु (सं॰)
लघुकथाएँ जीवनमूल्यों की 150.00

उपन्यास

डॉ॰ राजेन्द्र मिश्र
इतिहास की आवाज़ 450.00
श्रीमती सुषमा अग्रवाल
अनोखा उपहार 200.00
आसरा 100.00
तीन बीघा ज़मीन 200.00
मन के जीते जीत 200.00
नीरजा द्विवेदी
कालचक्र से परे 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
भीगे पंख 200.00
मानिला की योगिनी 200.00
डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध
और लहरें उफनती रहीं 200.00
डॉ॰ शिव शर्मा
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) 150.00
डॉ॰ मोहन गुप्त
अराज-राज 200.00
सुराज-राज 350.00
डॉ॰ आशा रावत
एक गुमनाम फौजी की डायरी 150.00
एक चेहरे की कहानी 150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) 100.00
प्रेमसागर तिवारी
एक फ़रिश्ता ऐसा देखा 250.00

एकांकी-नाटक

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी 200.00
मंचीय सामाजिक एकांकी 200.00
बच्चों के हास्य नाटक 200.00
बच्चों के रोचक नाटक 200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक 200.00
बच्चों के अनुपम नाटक 200.00
बच्चों के उत्तम नाटक 200.00
भारतीय गौरव के बाल नाटक 200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक 300.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक 200.00
प्रकाश मनु
बच्चों के अनोखे नाटक 200.00
हास्य-विनोद के नाटक 200.00
संसार : एक नाट्यशाला/बाबूसिंह चौहान 150.00
ग्यारह एकांकी/डॉ॰ हरिशरण वर्मा 200.00
दमन/रामाश्रय दीक्षित 100.00
स्वप्न पुरुष/उर्मिला अग्रवाल 150.00
अफलातून की अकादमी/डॉ॰ शिव शर्मा 150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले/निश्तर ख़ानक़ाही 125.00
यादों का मधुबन/कृष्ण राघव 150.00
समय के चाक पर/डॉ॰ लालबहादुर रावल 125.00
समय एक नाटक/डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल 200.00
दर्पण झूठ बोलता है/बाबूसिंह चौहान 60.00
मकड़जाल में आदमी/बाबूसिंह चौहान 80.00
उफनती नदियों के सामने/बाबूसिंह चौहान 100.00
इन दिनों समर में/डॉ॰ कृष्णकुमार रत्तू 250.00
अनुभव के पंख/चंद्रवीरसिंह गहलौत 250.00
डॉ॰ बालशौरि रेड्डी
मेरे साक्षात्कार 250.00
डॉ॰ बलजीत सिंह
आधी हकीकत आधा फ़साना 200.00
डॉ॰ ओमदत्त आर्य

फूलों की महक 200.00
डॉ॰ गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया'
संवाद : साहित्यकारों से 200.00
एक फ़रिश्ता ऐसा देखा/प्रेमसागर तिवारी 250.00

गीत-ग़ज़ल

निश्तर ख़ानक़ाही
निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन) 500.00
मोम की बैसाखियाँ (ग़ज़ल-संग्रह) 50.00
ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह) 80.00
ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
डॉ॰ कुँअर बेचैन
कोई आवाज़ देता है 150.00
दिन दिवंगत हुए 150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत 200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत 150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) 200.00
रमेश पोखरियाल 'निशंक'
मातृभूमि के लिए 200.00
संघर्ष जारी है 170.00
जीवन-पथ में 150.00
देश हम जलने न देंगे 150.00
तुम भी मेरे साथ चलो 150.00
लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'
झरनों का तराना है 200.00
राजेन्द्र मिश्र
असाबिया 200.00
समय के भूगोल में 200.00
आठवाँ राग 200.00
हवाएँ ख़ामोश हैं 200.00
रामेश्वरप्रसाद
शमा हर रंग में जलती है 150.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) 150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
गीतिका गोयल
मान भी जा छुटकी (कविताएँ) 150.00
रामगोपाल भारतीय
आदमी के हक़ में (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
रमेश कौशिक
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) 200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) 150.00
आर्यभूषण गर्ग
गांधारी का सच (खंडकाव्य) 200.00
डॉ॰ आकुल
राधेय (खंडकाव्य) 120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) 120.00
जिंदगी गाती तो है/(ग़ज़ल-संग्रह) 120.00
किशनस्वरूप
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
कर्नल तिलकराज
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
अग्निसुता/राजेंद्र शर्मा 150.00
सीतायनी/डॉ॰ शंकर क्षेम 150.00
शचींद्र भटनागर
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) 150.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) 200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) 200.00
मनोज अबोध
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
मेरे भीतर महक रहा है (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
तारा प्रकाश
तारा प्रकाश समग्र 500.00
उजियारा आशाओं का 150.00

बुलंदी इरादों की 150.00
चलने से मंज़िल मिलती है 200.00
इंद्रधनुष 200.00
संवेदनाओं के रंग 200.00
अश्विनीकुमार 'विष्णु'
सुरों के ख़त 100.00
सुनहरे मंत्र का जादू 100.00
सुनते हुए ऋतुगीत 150.00
सुबह की अंगूठी 150.00
डॉ॰ मीना अग्रवाल
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) 150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) 150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) 200.00
एक मुट्ठी धूप/नीरजा सिंह 100.00
डॉ॰ कमल मुसद्दी
कटे हाथों के हस्ताक्षर 150.00
डॉ॰ बलजीत सिंह
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) 150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) 150.00
भीतर का संगीत (दोहे) 200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहे) 200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) 200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) 200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) 200.00
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) 200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) 200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
अनजाने आकाश में 170.00
सत्येंद्र गुप्ता
बातें कुछ अनकही 200.00
मैंने देखा है 200.00
हौसला तो है 200.00
ज़िंदगी रुकती नहीं 200.00
जज़्बात की धूप/धूप धौलपुरी 250.00
नवलकिशोर शर्मा
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ 180.00
जब चाँद डूब रहा था 200.00
एड्स शतक/पूरणसिंह सैनी 150.00
डॉ॰ ओमदत्त आर्य
खोजें जीवन सत्य (दोहे) 150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) 200.00
सलेकचंद संगल
राष्ट्र-शक्ति 150.00
माँ तुझे प्रणाम 150.00
लहरों के विरुद्ध/डॉ॰ रामप्रकाश 200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता/महेंद्र कुमार 200.00
पीड़ा का राजमहल/डॉ॰ उर्मिला अग्रवाल 200.00
मैं एक समुद्र/डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध 200.00
उड़ान जारी है/विनोद भृंग 200.00
हरिराम 'पथिक'
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) 200.00
चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'
धनुषभंजक राम 200.00
एक कुल्हड़ चाय/स्वर्ण ज्योति 200.00
रामेश्वर वैष्णव
सूर्यनगर की चाँदनी (ग़ज़लें) 150.00
दामोदर खड़से
रात (रात पर कविताएँ) 150.00
डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (गीत खंड) 700.00
डॉ॰ महेंद्रसागर प्रचंडिया समग्र (दोहा खंड) 700.00

आत्मकथा-संस्मरण-पत्र

मेरा जीवन : ए-वन/काका हाथरसी 100.00
आत्मसरोवर/ओम्प्रकाश अग्रवाल 125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु/नीरजा द्विवेदी 200.00
सफ़र साठ साल का/डॉ॰अजय जनमेजय (सं) 400.00
गीतिका गोयल, अनुभूति भटनागर (संपादक)

यादों की गुल्लक 300.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)
उत्तरोत्तर 500.00
धर्मेन्द्र उपाध्याय
आमिर ख़ान : हिंदी सिनेमा के सेवक 300.00

बाल-साहित्य

लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'
गधा बत्तीसी 200.00
शंभूनाथ तिवारी
धरती पर चाँद (पुरस्कृत) 150.00
डॉ॰ बलजीतसिंह
हम बगिया के फूल (बालगीत) 150.00
आओ गीत सुनाओ गीत 150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने 200.00
दिन बचपन के (बालगीत) 200.00
विनोद भृंग
जादूगर बादल (बालगीत) 150.00
बालकृष्ण गर्ग
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) 150.00
गीतिका गोयल
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) 150.00
डॉ॰ सरला अग्रवाल
किशोर मन की कहानियाँ 150.00
डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध
चलो आकाश को छू लें 200.00
डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ
काग़ज़ की नाव 150.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मानव-विकास की कहानी 200.00
पार्टी गेम्स/चाँदनी कक्कड़ 125.00

समाजोन्मुख साहित्य

डॉ॰ सरिता शाह
उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन 200.00
निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00
नारी : कल और आज 200.00
निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे 125.00
हिंसा : कैसी-कैसी 200.00
दंगे : क्यों और कैसे (पुरस्कृत) 100.00
रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00
डॉ॰ गिरिराज शाह
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन 200.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
गुरु नानकदेव 200.00
अमृतवाणी 300.00
डॉ॰ मूलचन्द दालभ
वेद-वेदान्त दर्शन 300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व 300.00
कन्हैया गीता/डॉ॰ मूलचन्द दालभ 900.00
डॉ॰ कमलकांत बुधकर
मैं हरिद्वार बोल रहा हूँ 395.00
डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स 450.00
मनोज भारद्वाज
सिद्धाश्रम का संन्यासी 300.00
डॉ॰ लालबहादुर रावल
समुद्री दैत्य सुनामी 300.00

शोध अंक

शोध अंक भाग-1 200.00
शोध अंक भाग-2 200.00
शोध अंक भाग-3 200.00
शोध अंक भाग-4 200.00
शोध अंक भाग-5 200.00
शोध अंक भाग-6 200.00
शोध अंक भाग-7 200.00
शोध अंक भाग-8 200.00
शोध अंक भाग-9 200.00
शोध अंक भाग-10 200.00
शोध अंक भाग-11 200.00
शोध अंक भाग-12 200.00
शोध अंक भाग-13 200.00
शोध अंक भाग-14 200.00
शोध अंक भाग-15 200.00
शोध अंक भाग-16 200.00
शोध अंक भाग-17 200.00
शोध अंक भाग-18 200.00
शोध अंक भाग-19 200.00
शोध अंक भाग-20 200.00
शोध अंक भाग-21 200.00
शोध अंक भाग-22 200.00
शोध अंक भाग-23 200.00
शोध अंक भाग-24 200.00